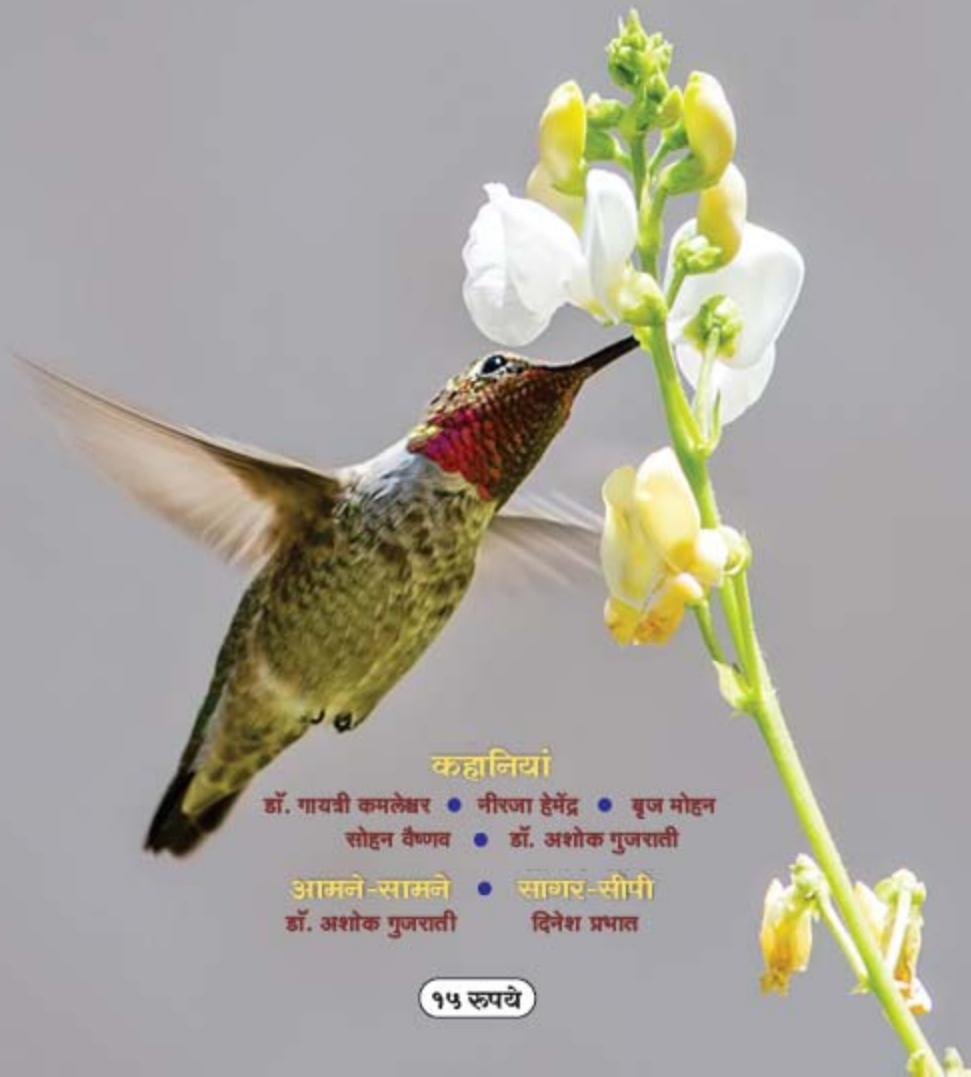


अंक : १३१

जुलाई - सितंबर २०१५

# कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका



## कहानियां

डॉ. गायत्री कमलेश्वर • नीरजा हेमेट्र • बृज मोहन  
सोहन वैष्णव • डॉ. अशोक गुजराती

आमले-सामले • सागर-सीपी  
डॉ. अशोक गुजराती दिनेश प्रभात

१५ रुपये

जुलाई-सितंबर २०१७

(१९७९ से प्रकाशित)

# कथाबिंब

## प्रधान संपादक

डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

## संपादिका

मंजुश्री

## संपादन सहयोग

जय प्रकाश त्रिपाठी

अश्विनी कुमार मिश्र

अशोक वशिष्ठ

हम्माद अहमद खान

संपादन-संचालन पूर्णतः

अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

## ● सदस्यता शुल्क ●

आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.,

वार्षिक : ५० रु.,

(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)

कृपया सदस्यता शुल्क

मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा

केवल "कथाबिंब" के नाम ही भेजें.

## ● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●

ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,

देवनार, मुंबई-४०० ०८८.

फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

e-mail : kathabimb@yahoo.com

www.kathabimb.com

## ● न्यूयॉर्क संपर्क ●

नरेश मिश्र

(M) 845-304-2414

नमित सक्सेना

(M) 347-514-4222

## ● शिकागो संपर्क ●

तूलिका सक्सेना

(M) 224-875-0738

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.

कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.

(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

## कहानियां

अतीत की शाख पर - डॉ. गायत्री कमलेश्वर ७

पहाड़ों की नर्म धूप - नीरजा हेमेट्र १३

कोटर वाले कक्का - बृज मोहन १९

देवा की वसीयत - सोहन वैष्णव २५

भगदड़ - डॉ. अशोक गुजराती २९

## लघुकथाएं

सुयोग्य लड़की / कृष्ण चंद्र महादेविया १७

कर्मयोगी / माधव नागदा २४

क्रिताबें / डॉ. कुंवर प्रेमिल २४

## कविताएं / गीत / गज़लें

कविता / जसप्रीत कौर "फलक" ११

गीत / डॉ. मधु प्रसाद २८

गीत / प्रो. अभिराज राजेंद्र मिश्र ३५

गज़ल / सच्चिदानंद "इंसान" ३६

## स्तंभ

"कुछ कहीं, कुछ अनकहीं" २

लेटर बॉक्स ४

"आमने-सामने" / डॉ. अशोक गुजराती ३७

"सागर-सीपी" / दिनेश प्रभात ४१

"बाइस्कोप" (सविता बजाज) / श्याम बेनेगल ४७

पुस्तक-समीक्षा ५०

## ● "कथाबिंब" अब फेसबुक पर भी ●



facebook.com/kathabimb

आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि

वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : हर्मिंग पक्षी

चित्रकार : श्रीमती रुथ यैंग (सैन डियेगो, अमेरिका).

www.ruthyangphotography.com

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

## कुछ कही, कुछ अनाकही

यह वर्ष का तीसरा अंक है. पिछला अंक अगस्त मध्य में ही रिलीज़ हो पाया था. प्रसन्नता है कि इस बार मात्र दो माह के अंतराल में “कथाबिंब” का १३१ वां अंक पाठकों तक पहुंचना संभव हो पाया. इतने वर्षों के बाद भी हर अंक एक चुनौती लेकर आता है. हां, इधर कुछ वर्षों से इतना अवश्य हुआ है कि रचनाकारों का भरपूर सहयोग हमें मिलने लगा है. सामान्य डाक के अलावा ई-मेल से भी अनेक कहानियां व अन्य छुटपुट रचनाएं प्रकाशन के लिए आती हैं. हमने कई बार निवेदन किया है कि कृपया रचनाएं पीडीएफ फाइल में अथवा यूनिकोड में भेजें. हमारी कोशिश रहती है कि सामान्यतया कहानी के निर्णय की सूचना एक माह में भेज दी जाये, अन्य रचनाओं के निर्णय में कुछ अधिक समय लग सकता है. कुछ रचनाकार एक साथ ई-मेल द्वारा “कथाबिंब” के साथ ही, अन्य अनेक पत्रिकाओं को भी रचना प्रेषित करते हैं. इन रचनाओं पर विचार करना संभव नहीं होता. हमारा यह भी आग्रह रहता है कि रचना के साथ इस बात का भी उल्लेख रहे कि रचना मौलिक है व निर्णय मिलने तक अन्यत्र नहीं भेजी जायेगी. कृपया लघुकथाएं, गज़ल, कविताएं जैसी छुटपुट रचनाएं भेजते समय, एक बार में कम से कम निर्णय की सुविधा के लिए ३ से ४ रचनाएं भेजें. पिछले अंक में बहन श्रीमती गायत्री कमलेश्वर के निधन की खबर पढ़ कर देश-विदेश के अनेक लेखकों व पाठकों के संवेदना संदेश मिले. हम सभी के हृदय से आभारी हैं. यह संयोग ही है कि एक पुरानी फ़ाइल देखते हुए गायत्री जी की एक अप्रकाशित कहानी मिली. उन्होंने शायद काफ़ी पहले, “कथाबिंब” में छपने के लिए अपनी दो कहानियां दी थीं, एक कहानी प्रकाशित हुई और दूसरी रखी रह गयी. अंक में उनकी स्मृति में यह कहानी प्रस्तुत है.

पिछले अंक में “सागर-सीपी” स्तंभ में भाई यज़्ज शर्मा का साक्षात्कार प्रकाशित हुआ था. किसी भी पत्रिका को दिया गया यह उनका अंतिम साक्षात्कार था. १४ अगस्त को हृदयाघात से शर्मा जी का अचानक स्वर्गवास हो गया. “कथाबिंब” परिवार की ओर से उनको भावभीनी श्रद्धांजलि!

अब इस अंक की कहानियों का ट्रेलर -- नियति क्या रच रही है कोई कुछ नहीं कह सकता. इस अंक की पहली कहानी “अतीत की शाख पर” गायत्री जी की अंतिम प्रकाशित कहानी है. एक महिला को पति ने छोड़ दिया है पर वह हार नहीं मानती, वह अपने पैरों पर खड़ी है. पति साथ नहीं है इसका उसे दुख नहीं है किंतु उसकी प्यारी बच्ची को उससे दूर रखा जाता है यह बात तकलीफदेय है. समय फिर करवट बदलता है. अगली कहानी की लेखिका नीरजा हेमेट्र (“पहाड़ों की नर्म धूप”) का नाम “कथाबिंब” के पाठकों के लिए कतिपय नया है. पहाड़ों पर रहने वालों का जीवन चाहे कितनी ही कठिनाइयों से भरा क्यों न हो किंतु उन्हें भी अपनी माटी से, नर्म धूप से उतना ही लगाव होता है जितना कहीं भी किसी और को. कहानी की नायिका शिवांगो न पहाड़ छोड़ना चाहती है न ही अपने पिता से दूर रहना चाहती, ऐसे में आखिर बीच का रास्ता निकल ही आता है. बरसों बाद हमें भाई बृजमोहन का लेखकीय योगदान प्राप्त हुआ. “कोटर वाले कक्का” रेलवे लाइन के पास रहने वाले एक ऐसे मुफ़लिस परिवार की कहानी है जिसे यह नहीं पता कि कल का भोजन कहां से आयेगा. बड़ा लड़का मोनू होशियार और होनहार है. रेलवे में काम करने वाले कक्का जब भी घर पर आते हैं तो बच्चों को खुशियां बांटते हैं. मोनू को उन्होंने गोद लिया है यह बात तब मालूम पड़ी जब एक रेल दुर्घटना में कक्का की मौत होगयी. अपनी मौत से भी कक्का ढेर सारी खुशियां पूरे परिवार को दे गये. नक्सलवाद से देश का एक बड़ा भू-भाग काफ़ी समय से प्रभावित है. शीघ्र कोई समाधान निकलेगा इसका कोई संकेत नहीं है. सोहन वैष्णव की कहानी “देवा की वसीयत” इसी पृष्ठभूमि पर आधारित है. रोहन की दंतेवाड़ा में नयी-नयी नौकरी लगती है. ट्रेन यात्रा के दौरान नक्सली देवा से उसका साबका होता है. सारी सच्चाई का पता बाद में पता लगता है. देवा को सही रास्ते पर लाने की रोहन असफल कोशिश करता है. किंतु यह तो एक अंतहीन लड़ाई है. “भगदड़” (डॉ. अशोक गुजराती) अंक की अंतिम कहानी है. भगदड़ के कारण मंदिरों में या इसी तरह के भीड़ वाले स्थानों में, दुर्घटनाओं में न जाने कितने लोगों की जानें गयी हैं. लेखक ने इन घटनाओं के पीछे एक सोची-समझी नियोजित साजिश की ओर इशारा किया है. वैसे यह कहना कि क्या सच है और क्या गलत यह कतई मुश्किल है.

आज सारा विश्व एक कठिन समय से गुज़र रहा है. सीरिया में इस्लाम के प्रभुत्व की लड़ाई महज उस क्षेत्र की लड़ाई नहीं है. इंटरनेट या अन्य माध्यमों से, हर कहीं से कम उम्र के युवा मुसलमानों को “इस्लामिक स्टेट” के लिए रिक्रूट किया जा रहा है. वहां पहुंच कर जब वास्तविकता का पता चलता है तब तक बहुत देर हो गयी होती है और फिर “लौटना” बहुत मुश्किल होता है. सीरिया और आसपास के अमनप्रिय लोग भाग-भाग कर यूरोप के देशों में शरण के लिए घुसने की कोशिश करते हैं. उनका क्या हश्र होता है कुछ पता नहीं. भारत में नेपाल, बंगलादेश, श्रीलंका और पाकिस्तान से लगातार

घुसपैठ होती रहती है। कश्मीर में वर्षों से मिलेट्री तैनात है। शायद ही कोई ऐसा दिन होगा जब सीमा पार से गोलाबारी न हो। नक्सल हमलों में भी हमारे नवजवानों की जानें जाती हैं। किसानों की आत्महत्याओं में भी कोई कमी नहीं हुई है।

२०१४ में लोकसभा चुनाव के परिणाम स्वरूप पूर्ण बहुमत वाली सरकार ५ साल के जनादेश के साथ केंद्र में आयी है। विरासत में बहुत सारी समस्याएं मिली हैं। ब्यूरोकेसी वही पुराने ढर्रे पर चल रही है। पिछले लगभग डेढ़ साल में किसी न किसी प्रांत में विधान सभा के चुनावों में प्रधानमंत्री से लेकर सरकार के सभी मंत्रियों को समय लगाना पड़ रहा है। राज्यसभा में बहुमत नहीं होने के कारण नये अध्यादेशों को लाना मुश्किल है। कॉन्ग्रेस अपनी हार को पचा नहीं पा रही है वह पूरी तरह दिगभ्रमित है। उसका एक ही उद्देश्य है संसद को नहीं चलने देना, जिससे कालांतर में नयी सरकार पर दोषारोपण किया जा सके कि देखा अपने वायदे पूरे नहीं कर पाये। यह एक तरह से “केकड़ा-प्रवृत्ति” है। केकड़ों में यह पाया जाता है कि यदि एक केकड़ा दीवाल पर चढ़ रहा हो तो शेष लटक कर उसे पीछे खींचने लगते हैं।

आजकल बिहार के चुनावों की सरगर्मी है। शीना हत्या का मामला ठंडा पड़ गया है और राधा मां पर तो कोई केस ही नहीं बनता! पूरे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर बस चुनाव फोबिया छाया हुआ है। किसने किसको क्या गाली दी, किसने क्या विवादित बयान दिया? सब ब्रेकिंग न्यूज़ और एक्सक्लूसिव के नाम पर सतत चलाया जा रहा है। बहुत पहले से मैंने टीवी सीरियलों को देखना बंद कर दिया था। कुछ सीरियल ख़तम होने का नाम ही नहीं लेते। वही गहने और महंगी साड़ियां पहने महिलाएं, बात-बात पर महल या घर के हाल में सब घर वालों का जमा हो जाना, एक के कुछ कहने के बाद बारी-बारी से सबके चेहरे दिखाना। अब धीरे-धीरे न्यूज़ चैनलों से भी मोहभंग होता जा रहा है। चाहे दूसरी चैनल हों या न्यूज़ चैनल सबका मुख्य उद्देश्य पैसा कमाना है। “कहीं नहीं जाइएगा, बस अभी लौटते हैं।” तुरंत विज्ञापन शुरू हो जाते हैं, फिर ४-५ मिनटों के बाद ही समय की गणना शुरू होती है। आधे घंटों के समाचारों में पहले “हेडलाइन्स” ...विज्ञापन... फिर कई प्रायोजक ... “बड़ी खबर” प्रायोजक... पहली खबर, प्रायोजक... दूसरी खबर, प्रायोजक... तीसरी खबर इत्यादि। फिर विज्ञापन। इस तरह १५ मिनट विज्ञापन और शेष “समाचार!” शाम के ६ बजे से रोज़ उन्हीं “अतिथियों” के साथ जुगाली शुरू ... “हल्ला बोल” या “बड़ी बहस.” आजकल हर चैनल बड़-चढ़ कर “स्वच्छ भारत अभियान” में तत्परता दिखाने की कोशिश कर रही है, साथ ही नये-नये गुटकों, यथा - महक, जयश्री, दिलबाग, शिखर, चैनी खैनी, रजनीगंधा, पान विलास, आर. एम. डी., शुद्ध प्लस और भी कुछ के विज्ञापन जिनमें बड़े-बड़े फ़िल्मी कलाकार होते हैं, धड़ल्ले से दिखाये जाते हैं। गुटका-बीड़ी लॉबी के सामने क्या मीडिया, क्या सरकार सबके मुंह “बंद” हैं। देश में कैंसर के मरीजों की संख्या बढ़ती ही जाती है। विज्ञापन दिये जाते हैं कि तंबाखू खाने और सिगरेट-बीड़ी पीने के कारण कैंसर होता है। गुटका जिसमें अधिकांशतः तंबाखू होती है भी कैंसर का कारण है। कूड़े के ढेरों पर हर ब्रांड के गुटके के खाली पैकट कोई भी देख सकता है। सड़क पर चलते हुए लोग, चलती कार का दरवाज़ा खोलकर गुटके की पीक थूकते हुए “महानुभाव” आपको कहीं भी दिख जायेंगे। क्यों नहीं कैबिनेट में अध्यादेश लाकर गुटका और प्लास्टिक पर तुरंत पाबंदी लगती? सबके दोहरे मापदंड हैं। राजस्थान में सिगरेट, गुटका जनता के हित में सस्ता किया गया! यह कैसा जनहित? सिगरेट-बीड़ी के पैकटों पर चेतावनी स्वरूप चित्रों के लिए समिति बनती है यह तय करने के लिए कि आकार ८०, ६० या फिर ४० प्रतिशत हो! इस पर भी विचार हुआ कि सिगरेट के पैकट पर तो चेतावनी होती है किंतु हर सिगरेट पर चेतावनी नहीं छपी जा सकती तो छुट्टा सिगरेट बेचने पर पाबंदी लगा देना चाहिए।

नयी सरकार आने के बाद से कहा जा रहा है कि महंगाई की दर कम हुई है। लेकिन ज़मीनी सच्चाई इससे कतई भिन्न है। टमाटर, आलू, प्याज़ की क्रीमतों के लिए मौसम की दुहाई देना उचित नहीं है। दालें सामान्य जन की पहुंच से बाहर हैं। स्पष्ट है कि जमाखोर, बिचौलिए और मुनाफ़ाखोर अंधाधुंध पैसा कमा रहे हैं। सिर्फ़ त्यौहारों के दिनों में नकली दूध और नकली खोया बनाने वालों पर छापे पड़ते हैं। जमाखोरी को तुरंत जघन्य अपराध की श्रेणी में लाना चाहिए। कितना अनाज बंदरगाहों में और खुले में पड़े-पड़े सड़ जाता है। इसमें युद्ध-स्तर पर कार्यवाही की आवश्यकता है। बड़े-बड़े स्मारकों के निर्माण में धन का अपव्यय करने की अपेक्षा देश के करोड़ों भूखे लोगों के पेट भरने से अच्छा कोई “स्मारक” नहीं हो सकता। देश में एक केंद्रीय “मानक निर्धारण संस्थान” कार्यरत है। इसको चीज़ों के मूल्य निर्धारण का भी अधिकार देना चाहिए। अधिकतम खुदरा क्रीमत के स्थान पर संस्थान “निम्नतम मूल्य” तय करे साथ ही गुणवत्ता का भी नियंत्रण करे। यानी लाभांश की सीमा सरकार तय करे। इन या ऐसे ही क्रदमों से महंगाई कम करना मुश्किल नहीं होगा। आपके पास कुछ अन्य सुझाव हैं तो सरकार को भेजें। आज भारतीय जनता के पास सबसे बड़ा अधिकार है : “सूचना का अधिकार.” यदि आपको कुछ ग़लत लग रहा है तो झिझके नहीं। अगर आपको शिकायत है तो मात्र दस रुपये में किसी भी विभाग की जानकारी आसानी से प्राप्त की जा सकती है।

अरविंद



## लेटर-बॉक्स



► जिस पत्रिका में कहानियां पढ़कर पूरा सुकून मिले वह पत्रिका है 'कथाबिंब'. मैं 'कथाबिंब' एक अरसे से पढ़ रहा हूँ. और इसका रसास्वादन भी पूरी तबियत से करता रहा हूँ. सच पूछा जाये तो मैंने कहानियां लिखना भी 'कथाबिंब' से सीखा जो आगे चलकर दो-दो कहानी संग्रहों के संपादन का सबब भी बना. इस बार अप्रैल-जून का अंक मिला तब कुछ फुरसत का आलम था. बड़ी बेसब्री से पढ़ा. मेरे ख्याल से पठन-पाठन ऐसी ही बेसब्री का तलबगार है... वह पूरी तन्मयता ... लयबद्धता चाहता है. 'सुरभि बेहेरा' की कहानी पढ़ने से पहले निगाहें उनके पते पर गयीं. चूंकि मैं भी ओड़ीसा होकर आया हूँ एक सर्वेक्षण के सिलसिले में. सीधे-सादे, मेहनतकश लोगों के बीच रहकर ज़रूर आप इंप्रेस होंगे ऐसा मेरा मानना है. कहानी में हैदराबाद के ट्रेनिंग सेंटर का जिक्र है जो मेरा ट्रेनिंग सेंटर भी रहा है. कहानी परस्पर सहृदयता के आधार पर बुनी गयी है. ... आज जिसका अभाव चारों तरफ परिलक्षित होता जा रहा है. खेद है.

'गुलाबी लिफ़ाफ़ा' में रूबी मोहंती ने उस महिला को लेकर कथानक बुना है जिसमें भारतीय नारी की सुगंध है. वह अपने परिवार... घर गृहस्थी... बच्चों में इतनी रम जाती है कि उसका 'स्व' भी कहीं खो जाता है. 'पति भक्ति' से सराबोर कहानी फिर हमें सत्यवान की सावित्री की याद दिलाती है. भारतीय नारी एक बार जिसकी हुई फिर दूसरे आदमी का प्रवेश कहां तक संभव है? पति उसके मोटापे, उसकी गहन पारिवारिक लिप्तता से दुखी होकर 'गुलाबी लिफ़ाफ़ा' भेजता है जिसका ट्रीटमेंट कारगर भी होता है. तीसरी कहानी डॉ. दीप्ति पटनायक को पढ़कर मैं भी संपादक जी की तरह इसे ओड़िया अंक मानने को तैयार हूँ.

सूदखोरी पर लिखी लघुकथा 'एक अकेला' समाज का वह सच है जिसकी गुंजलक में फंसकर कितने कर्जदार मर खप जाते हैं. ब्याज लेते जाते हैं... मूल धन पाते जाते हैं... फिर भी उनका कर्ज ज्यों का त्यों बना रहता है. कर्ज कभी उतरने का नाम ही नहीं लेता. छोटा हो या बड़ा शहर, इसने बरपाया है बड़ा कहर. विवशता में सुसाइड कर कितने जीवन, मृत्यु के मुंह में समा गये हैं.... अकल्पनीय है.

'सागर/सीपी' में लिव इन रिलेशनशिप पर काफ़ी चर्चा है जो एक सम-सामयिक समस्या है. कोई इसे समयानुकूल भी कहता है. कोई अपने कैरियर के लिए ज़रूरी बताता है. मैं उन सबसे एक ही बात पूछता हूँ कि ऐसा सभ्य करने लग जायें तो घर-गृहस्थी का क्या बनेगा? एक ग़लत परंपरा एक दिन इस समाज को खतरा बनकर निगल जायेगी... यह याद रखना पड़ेगा.

'आमने-सामने' स्तंभ पॉपुलर हो रहा है. उसमें विगत में भाग लेने वालों की बड़ी सूची इसकी पॉपुलरटी की द्योतक है. अन्य सामग्री भी विधिवत है. अरविंद जी की पैनी नज़र से गुजरकर ही 'कथाबिंब' में रचनाएं जगह बनाती हैं. एक बड़ी यात्रा की सहयात्री है 'कथाबिंब'. मुझे खुशी इस बात की रही है कि 'यथेष्ट' जगह मिली है मुझे भी इसमें.

- डॉ. कुंवर प्रेमिल

एम. आई. जी.-८, विजयनगर, जबलपुर-४८२००२ (म. प्र.)

► 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून '१५ अंक प्राप्त हुआ. सुरभि बेहेरा की कहानी 'अंतिम इच्छा' सकारात्मक अंत की रचना है. जीवन में दुःखद घटनाएं घटती हैं, किंतु उन्हें सुखांत मोड़ देना हमारे हाथ में है. रेणु के पति ललित की कैसर से अकाल मृत्यु हो जाती है. उदय, रेणु को उसके पुत्र लियो सहित अपना लेता है. रूबी मोहंती की कहानी

'गुलाबी लिफ़ाफ़ा' एक रहस्यमय सुखांत रचना है. रीना के व्यक्तित्व रूपांतरण का उसका पति सुनील एक नायाब तरीका ढूंढ़ता है. वह अपनी पत्नी के नाम एक गुमनाम प्रेमपत्र का सिलसिला चलाता है जिसके प्रभाव से रीना में शारीरिक-मानसिक परिवर्तन आते हैं. अंत में पति ही पूर्व प्रेमी निकलता है. चरित्र प्रधान कहानी 'धीरा मौसी' सबको

सुखी करती है पर उसके सुख की चिंता कोई नहीं करता। परंतु इसके बावजूद धीरा मौसी के सद्व्यवहार में किंचित बदलाव नहीं आता। डॉ. दीप्ति पटनायक की इस कहानी की नायिका का सारा जीवन परोपकार में खप जाता है। डॉ. भगवती प्रसाद द्विवेदी की कहानी 'बाट जोहते हुए' दरअसल कहानियों का एक संकुल है। इसमें लंगड़ी चाची, दीपा भौजी, गंगा बुआ जैसी कथानायिकाएं हैं जिनके नायकों ने उन्हें अकेला छोड़ दिया है। वे अपना अभिशप्त जीवन जीते हुए अर्थियों में रूपांतरित होती हैं। डॉ. शैलजा 'श्यामा' की लघु कहानी 'मानवाधिकार' एक पत्रकार की दूषित मनोवृत्ति की रचना है जो अपने समाचारों को करुणाजनित बनाने के लिए एक पीड़ित के चित्र का अवसरवादी उपयोग कर भावनाओं को भुनाता है। यज्ञ शर्मा से मधु अरोड़ा की बातचीत कुछ ज्यादा ही खिंच गयी है। समीक्षाओं में रूप देव गुण की समीक्षा बेहतर है। कुणाल शर्मा 'अनजान' की लघुकथा 'उसकी पढ़ाई' में पुत्री पिता की मद्यपान की लत मुक्ति का हेतु बनती है। अरविंद कुमार 'मुकुल' की लघुकथा 'क्रीमत' में त्रासदी के एवज में दिये गये मुआवजे की विडंबना का चित्रण है।

- हितेश व्यास

६ए/७०५, कल्पतरु सेरेनेटी,  
नवरत्न मंगल कार्यालय के सामने,  
महादेव नगर, मांजरी, पुणे-४१२३०७.

► 'कथाबिंब' अप्रैल जून २०१५ का अंक मिला। 'कुछ कही-कुछ अनकही' में कथा जगत के मूर्धन्य कथाकार कमलेश्वर जी की धर्मपत्नी श्रीमती गायत्री कमलेश्वर के ६ जुलाई २०१५ को स्वर्गवासी हो जाने की सूचना मिली। मैं उन्हें उनके योगदान के लिए श्रद्धांजली, भावसुमन अर्पित करता हूं। एक याद सहसा नज़रों के सामने कौंध गयी। 'सृजन-७७,' वर्ष १९७७ में दमोह जैसे अत्यंत छोटे कस्बाई शहर में हिंदी कथाजगत से जुड़े समकालीन लेखकों का एक बड़ा सम्मेलन, जमावड़ा हुआ था। मैं तब कोई २०-२२ वर्ष का नवोदित रचनाकार था। कमलेश्वर जी एवं उनके साथ उसकी पत्नी श्रीमती गायत्री जी को बहुत नज़दीक से देखने, सुनने का अभूतपूर्व अवसर मिला था। वह आज

भी मेरे मानस पटल पर ज्यों का त्यों अंकित है। इतना बड़ा आयोजन कमलेश्वरजी, श्रीमती गायत्री जी, दमोद के तत्कालीन उप जिलाधीश मनीष राय यादव, डॉ. रघुनंदन चिले, सत्यमोहन वर्मा, वीरेंद्र इंदीरिया जी के प्रेरणा एवं सहयोग के बिना संभव नहीं था। उन दिनों यह मेरे जीवन के 'न भूतो न भविष्यत' बना।

मैं 'कथाबिंब' के मंच का आभारी हूं, जिसने जब भी मेरी कोई रचना प्रकाशित की है उसे एक राष्ट्रीय पहचान जरूर मिली है। फिर चाहे वह कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित मेरी 'राई' कहानी हो या मेरी मूल विधा की कविताएं। आभारी हूं 'कथाबिंब' के परिवार का। सुधी पाठकों एवं श्रद्धेय साहित्यिक बंधुओं का।

- दयाशंकर 'सुबोध'

एमपीईबी, कॉलोनी, रामपुर,  
जबलपुर-४८२००८.

► 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून अंक यथा समय प्राप्त हुआ। यानी तीन दिन पहले और सफ़र में इसे साथ ले जाना नहीं भूला। मनोयोग से पढ़ा भी। सुरभि बेहेरा की कहानी 'अंतिम इच्छा' के उदय सरीखे पात्र आज समाज में कहां मिलते हैं? एक अच्छा प्रयास — काश उदय

से युवा वर्ग भी प्रेरणा ले। रूबी मोहंती की कहानी 'गुलाबी लिफ़ाफ़ा' एक कटु सत्य को सुंदर ढंग से रखती है कि घर को टूटने से कैसे बचाया जा सकता है। हालांकि भाग-दौड़ भरे जीवन में यह नाटकीय-सा भी लगता है मगर रचना प्रभाव छोड़ गयी।

कुणाल शर्मा की लघुकथा 'उसकी पढ़ाई' एक अप्रतिम रचना है लेखक को साधुवाद!

डॉ. दीप्ति पटनायक की 'धीरा मौसी' भी एक सार्थक रचना है। औरत का मोह ही है जो टूटते घरों को, रिश्तों के बिखराव को, रिसाव को काफ़ी हद तक सहेज लेता है यद्यपि ऐसे पात्र सूली पर तो चढ़ाये ही जाते हैं यह दुनिया का पुराना दस्तूर है। गज़लें अच्छी हैं। यज्ञ शर्मा का साक्षात्कार सटीक है मगर पुरस्कार को धनराशि से जोड़कर देखने की उनकी बात से मैं सहमत नहीं। वास्तव में सम्मान रचना का होता है और होना चाहिए लेखक तो एक निमित्त मात्र है।

अपनी-अपनी सोच है. पुरस्कारों की इस दौड़ में हर कोई बड़ा या छोटा, प्रत्यक्ष या परोक्ष शामिल होता ही है और यही कारण है कि इनकी गरिमा खत्म हो रही है.

लेखक का सबसे बड़ा सम्मान उसकी रचना पर टिप्पणी व पाठकों का प्यार है.

- **प्रद्युम्न भल्ला**

५०८, सेक्टर-१०, शहरी संपदा,  
कैथल (हरि.)-१३६०२७.

► 'कथाबिंब' अंक १३० प्राप्त हुआ. बहुत-बहुत धन्यवाद. आवरण चित्र हमेशा की तरह दुर्लभ है. 'कथाबिंब' धरती पर अवतरित हुई एक महान पत्रिका है. जिस तरह साहित्य सर्जक के लिए हर वाक्य, वाक्य में हर शब्द धड़कता है, इसी तरह पत्रिका के हर शब्द में हर अक्षर धड़कता है. पत्रिका की दुनिया ज्ञान से आलोकित है.

पिछले वर्ष 'कथाबिंब' के कहानी विशेषांक के लोकार्पण कार्यक्रम में 'गायत्री कमलेश्वर' जी से मिलना एक छोटी-सी मुलाकात ही तो थी. प्रोग्राम में बैठी फूलों-सी मुस्करा रही थीं. सोचा था कभी दोबारा मिलूंगी तो ढेर सारी बातें करूंगी. क्या करूं. कभी उनके कहे तारीफ़ भरे शब्द आंखों के सामने से गुजर जाते हैं. ऐसा लगा एक मौसम बहार आने से पहले ही गुजर गया. जल्दी अहसास क्यों नहीं हुआ. प्लीज़ उनका परिचय फ़ोटो सहित छाप दीजिएगा. वह एक महान महिला थीं, सुविख्यात शख़्सियत कमलेश्वरजी की पत्नी थीं. बहुत बड़ी बात है. मैं उनके जाने से बहुत दुखी हूं. पर यह तो विधि का विधान है.

- **सविता बजाज**

पो. बॉक्स १९७४३, जयराज नगर,  
बोरीवली (प.), मुंबई-४०००९१.

► 'कथाबिंब' अप्रैल-जून २०१५ का अंक मिला. इस अंक ने पत्रिका की इस नीति को ज़ाहिर किया कि वह राष्ट्रीय पत्रिका के अपने दायित्वों के प्रति सजग ही नहीं, संवेदनशील भी है. पत्रिका के ताज़ा अंक में तीन ओड़िया भाषी मेधावी कथाकारों की कहानियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना और तीनों महिला कथाकारों की उदारमन से प्रशंसा कर उनके लेखन को रेखांकित करना मन को भा गया. इन कथाकारों की कहानियों को पढ़ने के बाद एक बात तो मैं निःसंकोच रूप से कह सकता हूं कि तीनों का

अध्ययन चिंतन, व्यापक है और उनमें चमत्कार की हद तक कथादृष्टि है. कथ्य को बिना खरोंच के उसकी परिणति तक पहुंचाने का कौशल भी इन तीनों के पास है.

आप 'कुछ कही, कुछ अनकही' में प्रस्तुत अंक की कहानियों में प्रवेश का दरवाज़ा तो खोलते ही हैं, साथ ही मात्र दो पृष्ठों में दुनिया जहान की नब्ज पर हाथ भी रख देते हैं. आपकी कलम का ही कमाल है कि संपादकीय की तराजू गलत तरफ़ झुकती नहीं है. आप पते की बात भी कह जाते हैं और अपनी बौद्धिक और पत्रकारीय निष्पक्षता को बनाये भी रखते हैं. आपके इस कौशल को मैं प्रणाम करता हूं.

अंक की कुछ विशिष्ट कहानियों की चर्चा — रूबी मोहंती की कहानी 'गुलाबी लिफ़ाफ़ा' को कथाकार ने भाषा शैली और कथन, तीनों की दृष्टि से अच्छा ट्रीटमेंट दिया है. कहानी ख़ूब प्रभावित भी करती है और मैं मानता हूं कि चौके-चूल्हे की पारंपरिक सीमाओं के बीच खट रही औरतों को सुखी और सुंदर बनी रहने की सरल-सी राह भी वह अवश्य दिखायेगी. इस कहानी का नायक गुलाबी लिफ़ाफ़ा है, जो कहानी की नायिका रीना को बार-बार मिलता है और उसकी जीवन शैली को बदल कर रख देता है. वस्तुतः यह पत्र और कोई नहीं, उसका पति ही लिखता था. आश्चर्य की बात है कि दो बच्चों की मां रीना उन हस्तलिखित पत्रों को देखकर अपने पति की प्लानिंग को पहला लिफ़ाफ़ा मिलते ही नहीं पहचान सकी? क्या एक पत्नी अपने पति के हस्ताक्षर नहीं पहचानती! रीना एक स्थान पर मन ही मन सोचती भी है — 'लिखाई किसकी हो सकती है?' बाद में पति गुलाबी लिफ़ाफ़े का रहस्य खोलते हुए कहता भी है कि लिफ़ाफ़ा तो वह स्वयं भिजवाता था. कोई पति यह तो नहीं चाहेगा, कि उसकी पत्नी को अंतरंग पत्र अन्य से लिखवाकर भेजे. इस विसंगति को समाप्त करने के लिए पत्र को टाइप किया हुआ बताया जाना चाहिए. यह काम रीना अथवा पति दोनों से किसी एक द्वारा संवाद, स्वगत कथन के माध्यम से किया जा सकता है. इस कहानी में एक चूक शुरू में और हो गयी है. पाचवें पैरे में उल्लेख है — "विवाह के एक साल बाद बौनी और रौनी की मां बन चुकी..." क्या यह व्यावहारिक है? इस चूक को अब 'दो जुड़वां बच्चों' शब्द जोड़कर सुधारा जा सकता है.

सुरभि बेहेरा की कहानी 'अंतिम इच्छा' भी एक प्रभावशाली रचना है. इसमें उदय और सुरभि के चरित्र को

(शेषांश पृष्ठ ५२ पर पढ़ें.)

## अतीत की शाख घर

डॉ. गायत्री कमलेश्वर

**सी** मा समाज सेवा कार्यालय से लौटी थी तो पूरी तरह थक गयी थी. उससे अपने कमरे का ताला भी पूरी तरह खुल नहीं रहा था. कभी उसका पल्लू सामने आ जाता था, कभी उसके कंधे पर पड़ा थैला सामने की तरफ लटक जाता था. उन दोनों को संभालते-संभालते वह तंग आ गयी थी. उसने झुंझलाकर अपने कंधे का थैला जमीन पर पटका और ठीक से अपना पल्लू संभाला फिर कहीं ताले में चाबी लगायी, तब जाकर ताला खुला.

उसने यह कमरा इसीलिए इस बस्ती में लिया था कि उसका कार्यालय यहां से काफ़ी नज़दीक था. वैसे वह अपने मां-बाप के घर भी रह सकती थी जो दिल्ली में ही दरियागंज में रहते थे. परंतु वह उन पर बोझ नहीं बनना चाहती थी. फिर यह कार्यालय वहां से काफ़ी दूर पड़ता था. अकेली औरत के लिए रास्तों की दूरियां पार करना बहुत मुश्किल हो जाता है, इसीलिए उसने संस्था की बड़ी अधिकारी से कहकर इस कमरे का इंतजाम करवा लिया था. जिंदगी की मज़बूरियां औरतों को कहां से कहां लाकर पटक देती हैं. इस बात को वह अच्छी तरह जान गयी थी. पर जबसे इस कार्यालय में काम करने लगी थी और उसने छोटे-छोटे परिवारों की तरह-तरह की मज़बूरियां और समस्याओं को नज़दीक से देखा था तो उसके मन में अजीब-सा साहस आ गया था. उसे रिश्तों की दुनिया झूठी लगने लगी थी. पर जब भी वह अकेली होती थी, पिछली जिंदगी की टीस उसके दिल दिमाग पर हावी रहती थी, वह सोचती थी कि उससे कहां कोई ग़लती हो गयी जिसने उसे इतना अकेला कर दिया. उसी बीच उसे याद आती थी अपनी बच्ची मिनी जिसको उसने कितने मन से पाला था. उसके पति ने उसको धोखा दिया था, क्या उसका खून भी धोखा दे गया था!

जब वह उसको अपने पति से लेने गयी थी तब मिनी कितनी अकड़ कर बोली थी, “मम्मी तुम तो गंदी हो मैं तो अपने पापा के पास रहूंगी.” उस समय चार साल की बच्ची

से ये शब्द सुनकर उसके कान झनझना उठे थे. उसका दिल तेज़ी से धड़कने लगा था. वह कटी पतंग की तरह घर की सीढ़ियों से उतर कर वापस आ गयी थी.

उसके बाद वह कितनी बार उससे मिलने गयी थी, पर हमेशा मिनी की खामोश नज़रें उससे बोलना चाहते हुए भी कुछ कहती नहीं थीं और उसके होंठ ऐसे सिल जाते कि जैसे उनको बोलना तक नहीं आता था. बाद में पता लगा कि उसके पति ने दूसरी शादी कर ली है और मिनी उन्हीं के पास रहने लगी है.

□

ताला खोलने के बाद उसने दरवाज़ा खोला तो अंदर धूरी शाम का अंधेरा पूरी तरह छा गया था इसलिए अंदर की चीज़ें धुंधली सी दिखाई देने लगी थीं. उसे वह अंधेरा कभी अच्छा नहीं लगा था. लाइट जलाते ही जैसे उसे राहत मिल गयी थी. उसने अपने कंधे से थैला उतार कर मेज़ पर रखा और चारपाई पर आकर अधकटे पेड़ की तरह लेट गयी थी. इस तरह उसे थोड़ा आराम मिल गया था. यह उसका रोज़ का रूटीन हो गया था. जब भी वह बाहर से आती थी सीधी चारपाई पर लेट जाती थी, तब कहीं उसे आराम मिलता था.

अपनी बेटे मिनी की फ़ोटो, जिसको उसने लैमिनेट करवा कर अपनी चारपाई के सामने टांग लिया था, उसको देखते ही पिछला सब कुछ उसे याद आ जाता था. इस तरह अठारह साल उसने इसी तरह काट दिये थे. उसने अपनी बेटे से मिलने के लिए कितने जतन किये थे, पर हमेशा निराश होकर लौटी थी.

एक बार तो वह बहुत सी टॉफियां तथा सुंदर-सुंदर फ़्रॉकें लेकर उसके स्कूल पहुंच गयी थी, उसके दूसरे दिन उसका जन्मदिन था. परंतु उसकी प्रिंसिपल ने उसको मिनी से मिलने के लिए सख़्त मना कर दिया था, शायद उसके पति की हिदायत थी कि मिनी को किसी बाहरी आदमी या





जन्म १२ जनवरी, १९३७, फतेहगढ़ (उ. प्र.).

निधन : ६ जुलाई २०१५.

शिक्षा : एम. ए. (आगरा वि. वि.); पीएच. डी (बंबई वि. वि.),

विषय : 'माधवराय सप्रे के जीवन और साहित्य का अनुशीलन'.

: प्रकाशन :

प्रारंभ में कुछ कहानियां 'शांता वर्मा' के नाम से प्रकाशित. पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां तथा लेख आदि का प्रकाशन. 'कमलेश्वर मेरे हमसफर' (संस्मरण) 'एक बाप' और 'मिंटी' (कहानी संग्रह).

औरत से मिलने नहीं दिया जाये. यह बात उसको प्रिंसीपल से ही मालूम हुई थी. उस समय यही उचित समझा था कि मिनी के लिए लायी सारी चीजें प्रिंसीपल को सौंप कर वापस चली जाये.

जब वह प्रिंसीपल के कमरे से बाहर निकल रही थी तो उसने देखा दूर एक लड़की अपनी ड्रेस का लाल स्वेटर ठीक करते हुए उसे बड़े गौर से देख रही है. उसने उसे देखकर इशारा भी किया था, परंतु वह उसके पास तक नहीं आयी. वह सूरत-शक्ल से बिल्कुल मिनी थी, उस समय वह करीब आठ या नौ साल की ही होगी. इस तरह कितने जन्मदिन आये और चले गये. बस सीमा इतना ही कर पायी थी कि जन्मदिन पर मिनी के लिए एक सुंदर सा बर्थ-डे कार्ड भेज देती थी, ताकि कभी भी अपने खून को याद आयेगी तो शायद वह कुछ बदल जाये, पर अभी तक ऐसा कुछ नहीं बदला था.

अब तो उसके सारे काम एक रूटीन में बदल गये थे इसमें मानसिकता कहीं भी आड़े नहीं आती थी, कितने-कितने दिन हो जाते थे वह अपने मां-बाप से मिलने भी नहीं जाती थी. जब कभी भाई दुइज हुई या होली-दिवाली हुई वह मिठाई का डिब्बा लेकर पहुंच जाती थी. भाई का अपना

परिवार था. उसी के पास उसके मां-बाप रहते थे. रिटायर होने के बाद पिता को थोड़ी बहुत पेंशन मिलती थी जो उन दोनों के लिए काफी होती थी, फिर भाई का पूरा सहारा था, इसलिए मां-बाप की उसे चिंता नहीं थी.

घर न जाने का उसका और भी एक कारण था. वह यह कि जब भी वह घर जाती थी तभी उसकी मां भाभी के सामने ही पिछला जो कुछ घटा था उसको याद कर करके रोने लगती थीं. कहतीं, "मैंने क्या कुछ नहीं दिया था, उसके पापा ने तो उसकी सभी फ़रमाइशें पूरी की थीं, पूरे बीस तोले सोना दिया था. लेकिन उन सालों ने सब कुछ रख लिया, सीमा बिचारी को एक पतली-सी चेन देकर वापस भेज दिया था. अब तो उनके सामने भी बच्ची है जब वह कुछ ऐसा वैसा करेगी तभी पता चलेगा सालों को."

यही बात सीमा को अच्छी नहीं लगती थी. वह नहीं चाहती थी कि उसके खून की बनी बच्ची, इस प्रकार की बन जाये. उसने उसे पूरी तरह पाला नहीं पर जन्म तो दिया था. वह आखिर मां है, वह किस तरह अपनी मिनी की बुराई सह सकती थी.

एक बार तलाक के मुकदमे के सिलसिले में उसे कोर्ट जाना पड़ा था, तब भी मिनी किसी औरत के साथ एक कुर्सी पर बैठी टॉफियां खाती जा रही थी. उसको देखते ही मिनी टॉफियों का पैकेट लेकर उसके पास तक आयी थी, बोली, "मम्मी तुम भी टॉफियां खाओ." उसी समय उसके पति ने मिनी को डांटते हुए कहा था, "जाकर अपनी आंटी के पास बैठो मैं अभी आ रहा हूं." मिनी उनकी डांट से सहम गयी थी और तिरछी-तिरछी नज़रों से उसकी तरफ देखने लगी थी. उस समय मिनी शायद साढ़े पांच साल की रही होगी. बाद में पता चला कि जिस औरत के साथ मिनी कोर्ट में बैठी थी, वही औरत उसकी सौतेली मां बन गयी थी. उस समय उसका मन अंदर ही अंदर रो पड़ा था. उससे तलाक के कागज़ों पर दस्तखत नहीं हो पा रहे थे. उसका हाथ कांप-कांप जाता था. पर वकील ने बहुत धीरज से कहा था कि, "अगर आप जल्दी कर दें तो ..."

उसी समय उसने कलम उठा कर उन कागज़ों पर ऐसे दस्तखत कर दिये थे जैसे सीने में चाकू की तेज़ धार चला दी गयी हो. उसने एक नज़र अपने पति को देखा था. उनकी भी आंखें गीली हो आयी थीं, पर पुरुष का अहम उससे यह सब करवा रहा था. उस समय वह अपने साथ

मां-बाप, भाई-भाभी किसी को नहीं ले गयी थी. वह अपनी सारी लड़ाई अपने आप और अकेले लड़ना चाहती थी. उस समय की बात जब भी वह याद करती थी उसका सारा शरीर कांप-कांप जाता था. परंतु अब उसने अपनी सारी परेशानियों को ऐसे झटक दिया था कि उसको लगता ही नहीं था कि कभी उसके साथ कुछ ऐसा भी हुआ था.

इसीलिए उसने अपने समाज कल्याण कार्यालय का एक स्लोगन भी बनाया था :

**'मज़बूर औरतों जीना सीखो,  
काम करो और बढ़ना सीखो,  
पुरुष न हो केवल मज़बूरी,  
चाहे करना पड़े मज़दूरी  
अपने हाथों जीना सीखो,  
मज़बूर औरतों जीना सीखो!'**

जबसे उसने इस तरह के स्लोगनों को दीवाल पर चिपकवाया था, उसके साथ काम करने वाली औरतों में और भी ताकत आ गयी थी. उसके साथ बहुत सी औरतें और जुड़ने लगी थीं. पर मिनी की याद उसके मन से नहीं निकल पायी थी.

पिछले दिनों अपनी किसी मित्र से उसे पता लगा था कि मिनी की शादी होने वाली है. उन दिनों वह बहुत विचलित हो गयी थी. उसने सोचा कि मिनी एकदम से इतनी बड़ी कैसे हो गयी. क्या जिंदगी के अठारह साल ऐसे ही निकल गये. उसका मन हुआ कि मिनी के लिए एक सुंदर-सी साड़ी भेज दे, पर कैसे? अगर इतने दिनों में मिनी ही बदल गयी होगी तो उसकी साड़ी को कौन स्वीकार करेगा. मां-बेटी का रिश्ता भी बड़ा अजीब सा होता है. मां का दिल बराबर अपनी बेटी के लिए ललकता रहता है. पर बेटी का दिल भी उसे याद करता है इसका उसे पता भी नहीं लगता. उसने तो हर कार्ड उसे अपना पता लिख कर भेजा था. वह एक ही लाइन उसे लिखकर डाल देती तो उसका दिल कितना खुश हो जाता. पर इतने बरसों में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था. बहुत पहले जब वह सात या आठ साल की रही होगी. नये साल के एक कार्ड के साथ मिनी ने अपनी एक फ़ोटो भेजी थी, जिसमें चौक वाली मिडी और उसीसे मैचिंग जर्सी पहने हुए थी. उसका गौरा रंग गुलाब के फूलों जैसा चमक रहा था. उसी फ़ोटो को उसने लैमिनेट करवा कर अपनी चारपाई के सामने टांग लिया था. उसके बाद से

मिनी की तरफ से बिलकुल सन्नाटा था. फिर उसे ध्यान आया कि शायद उस औरत ने अपने सम्मोहन से उसे ऐसे बांध लिया होगा कि मिनी अपनी मां को पूरी तरह भूल गयी होगी. यह सोचकर उसकी आंखों में आंसू आ गये थे. आंसू आते ही उसने सोचा कि वह इतनी मज़बूर औरत कैसे बन गयी थी, जो दूसरों को जीना सिखाती है. उसने जल्दी से अपनी आंखें पोंछ ली थी.

□

पता नहीं इस कमरे में आकर वह जब भी लेटती थी और सामने लगी मिनी की फ़ोटो को देखती, तभी उसकी सारी ताकत पिघल जाती थी और वह एक कमज़ोर औरत बन जाती थी. उसके शरीर में इतनी ताकत भी नहीं रहती थी कि उठकर अपने लिए चाय भी बनाये. पर थोड़ी देर बाद वह लंबी-लंबी सांसें लेकर अपने अंदर ताकत भरती, फिर तय करती थी कि इन बातों को सोच-सोच कर उसे क्या मिलेगा? वह जब दूसरी औरतों के मन में जीने की शक्ति पैदा करती है तो वह खुद क्यों कमज़ोर पड़ गयी? यह सोचकर एकदम से वह चारपाई से उठी, उसी समय उसके दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी, उसने उठकर देखा तो पड़ोस का एक लड़का खड़ा था. उसने एक चिट्ठी देते हुए कहा कि एक पोस्टमैन आपको पूछ रहा था उसी ने यह चिट्ठी दी है ताकि मैं आपको दे दूं.

चिट्ठी देखते ही वह आश्चर्य में पड़ गयी थी, बहुत सालों बाद उसके नाम कोई पत्र आया था. उसने जल्दी से उसे खोला, उसमें देखा कि पत्र के साथ एक फ़ोटो भी है. पहले तो वह आश्चर्य में पड़ गयी कि यह फ़ोटो ... उस फ़ोटो में मिनी थी और उसका पति चिपका हुआ खड़ा था. दोनों की जोड़ी बहुत ही अच्छी लग रही थी. वह मिनी की शादी की फ़ोटो को देखते ही चकित रह गयी थी. उसी समय सामने खड़े लड़के ने पूछा कि, "दीदी किसकी फ़ोटो है?" सीमा ने मुस्कराते हुए बताया था कि वह फ़ोटो उसकी अपनी बेटी मिनी की शादी की है. फिर बड़े प्यार से बोली थी, "देखो न कितनी सुंदर लग रही है." मिनी की फ़ोटो देखकर जैसे वह पागल-सी हो गयी हो. उसकी भावुकता देखकर लड़का चुपचाप वहां से चला गया था. सीमा मिनी का पत्र पढ़ने लगी थी. उसमें लिखा था —

'मेरी प्यारी मम्मी को बहुत-बहुत प्यार!'

मम्मी मेरा पत्र पाकर बहुत आश्चर्य में पड़ गयी होगी.

यह सोचकर कि इतने वर्षों तक मिनी ने क्यों नहीं पत्र लिखा. यह प्रश्न आपके मस्तिष्क में बराबर घूमता रहा होगा. और हमारे प्रति आपके मन में एक गुस्सा भी रहा होगा. अब मैं बड़ी हो गयी हूँ. आपके मन की हालत मैं अच्छी तरह समझ सकती हूँ. अब तो हमारी शादी हो गयी है. एक तरह से मैं अपने पति के साथ पूरी तरह स्वतंत्र हूँ. मैं अपना हर क्रदम अपने मन से भी उठा सकती हूँ. अब मुझमें इतनी शक्ति भी आ गयी है. आपको मालूम ही होगा कि हमारी शादी को चार महीने हो गये हैं. इन चार महीनों में मैंने अपने पति को पूरी तरह समझ लिया है. मुझे उन पर पूरा विश्वास हो गया है कि मेरी अंतरात्मा की हर इच्छा को वह हृदय से पूरा करना चाहते हैं. मेरी सबसे पहली इच्छा थी कि शादी के बाद आपसे मिलूं.

इसीलिए मंगलवार की सुबह राजधानी से हम दोनों आपसे मिलने आ रहे हैं. उसके बाद लखनऊ-बनारस का टूर है. इसलिए बुधवार को हम लोग लखनऊ चले जायेंगे. उसका रिजर्वेशन इनके ऑफिस से पहले ही हो गया है. इसलिए आप बिलकुल परेशान न होइएगा.

मम्मी, किसी बात का संकोच मत कीजिएगा. मैंने आपके बारे में सब कुछ अपने पति को बता दिया है. वे बहुत सीधे हैं. बस आपका आशीर्वाद चाहिए...'

सीमा ज्यों-ज्यों पत्र पढ़ती जा रही थी उसके मन में अजीब सा उत्साह पनपता जा रहा था. वह सोचने लगी थी कि कल ही तो मंगलवार है और रात भी होने लगी है. वह किस तरह तैयारी करे कि अपनी बेटी-दामाद की अच्छी तरह खातिरदारी कर सके. फिर भी वह पत्र को ऐसे जकड़ कर पकड़े हुए थी कि उसको पढ़े बिना वह कोई काम नहीं कर सकती थी उसने आगे पढ़ा...

“मम्मी शायद मिलने पर और अपने पति के सामने इतनी बातें न कर पाऊं. पर मैं आपके सामने अपना पिछला सब खोल कर रखना चाहती हूँ. पता नहीं उतना लिख पाऊंगी या नहीं, पर थोड़ा बहुत इस प्रकार है. मैं जब चार-पांच साल की थी तब की बात तो मैं ठीक से बता नहीं सकती हूँ. मुझे नहीं मालूम था कि आपके और पापा के बीच में ऐसा कुछ पनप रहा है कि आप इतनी दूर चली जायेंगी. मैं अक्सर आपको सपनों में देखती थी. पर मम्मी मैं क्या करती आपके पास आ नहीं सकती थी क्योंकि पापा और दूसरी वाली मम्मी के सामने जब भी मैं आपकी बात करती घर में एक हंगामा-सा खड़ा हो जाता था. मैं सहम जाती थी,

फिर कुछ दिन बाद मैंने आपकी बात करना ही बंद कर दिया था, पर चुपके-चुपके मैं आपकी याद करती रहती थी.

मुझे याद है आप एक बार स्कूल में आयी थीं, पर मुझे बहुत डर लग रहा था कि अगर आपसे कुछ बात करूंगी तो हमारी टीचर कहीं स्कूल से न निकाल दें. बताओ मम्मी मैं क्या करती?

मुझे याद है एक बार आपने जन्मदिन पर बहुत सुंदर-सा कार्ड भेजा था, पर वह कार्ड हमारी दूसरी वाली मम्मी के हाथ पड़ गया था, फिर तो कुछ न पूछो, उस दिन तो मम्मी-पापा में बेहद झगड़ा हुआ था. उसके बाद वो कुछ सामान एक अटैची में डाल कर अपनी एक सहेली के घर चली गयी थीं. उस दिन पापा बहुत परेशान हो गये थे. फिर मम्मी आपका भेजा हुआ कार्ड उन्होंने कई बार देखा था. मुझे ऐसा लगा कि पापा के मन में आपके प्रति गहरा पाश्चाताप है. पर पुरुष जाति को जहां तक मैंने पहचाना है वह यही कि अपनी की हुई गलती को कभी मंजूर नहीं करते हैं. शायद हमारे पापा इसी तरह की हस्ती हैं. दूसरे दिन दूसरी वाली मम्मी खुद ही घर चली आयी थी.

मम्मी, मैंने कई बार महसूस किया था कि पापा और दूसरी वाली मम्मी में कहीं अंतरंग रिश्ता नहीं बन पाया है. पर दोनों डरते हुए एक ही छत में रहते थे. उसी दिन से मुझे ज्ञान सा हुआ कि मैं अपने पति को बेहद प्यार करूंगी. उन पर किसी प्रकार का शक नहीं लादूंगी. अभी तक मम्मी मैंने ऐसा कोई क्रदम नहीं उठाया जिसमें पापा को अपमानित होना पड़े. पर ये 'रघुकुल' हमारे पति भी बहुत समझदार हैं लगता है कि वह औरत की क्रदर करना जानते हैं. वह घंटों मेरे साथ इसी प्रकार की बातें करते रहते हैं. इसीलिए तो मम्मी मैं तुम्हारे पास आ रही हूँ.

पर मम्मी एक बात और बताऊं, दूसरी वाली मम्मी कोई खराब औरत नहीं है. उन्होंने मुझे पालने में कोई क्रसर बाकी नहीं रखी. शायद जो कुछ मैं आज हूँ, वह उन्हीं के कारण हूँ. मेरी पढ़ाई हमेशा कॉन्वेन्ट स्कूल में हुई. मम्मी तुम्हें जानकर ताज़्जुब होगा कि मैं मॉन्टसरी स्कूल के बच्चों को पढ़ाती भी हूँ. पर उनकी यही गलती है कि तुम्हारे होते हुए भी पापा को उन्होंने अपने सम्मोहन में इस तरह बांध लिया था कि पापा तुमसे दूर होते गये. इसमें मैं पापा की गलती मानती हूँ. वे इतने कमज़ोर क्यों पड़ गये थे कि इतनी अच्छी पत्नी छोड़कर पराई औरत के सम्मोहन में फंस गये.

खैर छोड़ो मम्मी — अब इन बातों में कुछ रखा नहीं है.

**कविता**

**लोग कहते हैं ...**

✍ जसप्रीत कौर 'फलक'

लोग कहते हैं हंसों को सदा  
खुश रहने को,  
मगर मैं नहीं जानती  
खुशी किसे कहते हैं,  
कहां मिलती है यह,  
कौन से बाजार की रौनक है,  
किसे बादशाह की सल्तनत है,  
लोग कहते हैं हंसों को सदा  
खुश रहने को,  
मगर मैं नहीं जानती  
खुशी किसे कहते हैं ?

कोई बताये मुझे  
यह किसे चौखट की जीनत है,  
किसे कमरे में कैद है,  
किसे अलमारी में बंद है,  
कहां है इसकी चाबी,  
किसे छोर है दरवाजा इसका,  
लोग कहते हैं हंसों को सदा.  
खुश रहने को,  
मगर मैं नहीं जानती,  
खुशी किसे कहते हैं ?

किसे जंगल में रहती है,  
किसे वृक्ष पर होती है,  
किसे फूल से करती है बातें,  
पता चले तो बरसों से बिछुड़ी सखी को अपने  
गले लगा लूं,  
लोग कहते हैं हंसों को सदा,  
खुश रहने को,  
मगर यह मदमस्त शहर क्या जाने,  
खुशी अक्सर दे जाती है छलावा मुझको  
पास आकर बदल जाती है दुःख में,  
हाथ लगाऊं तो श्विसक जाती है आगे  
मेरे लिए तो खुशी वो फूल है  
जिसे छूने पर बंद हो जाती है  
उसकी पंखुड़ियां.

लोग कहते हैं हंसों को सदा  
खुश रहने को  
मगर मैं नहीं जानती  
खुशी किसे कहते हैं ?

✉ मकान नं. ११, सेक्टर-१ए,

गुरु गियान विहार

डुगरी, लुधियाना.

मो.: ८८७२४७२८३८

पर मैं इतना तो महसूस कर सकती हूँ कि तुमने कितना-कितना सहा होगा, पर मैं क्या कर सकती थी मम्मी. उस घर में रहकर मैं चारों तरफ़ से इस प्रकार बंधी थी कि तुम्हारे बारे में सोचना भी मेरे लिए मुश्किल हो गया था. क्योंकि मेरे अलावा पापा की कोई औलाद नहीं थी. इसीलिए नयी वाली मम्मी हर समय अपने आपको असुरक्षित समझती थी.

इसलिए पापा के चारों तरफ़ इस तरह से वह घूमा

करती थी कि पापा कहीं उनके हाथ से निकल कर भाग न जायें. कहीं न कहीं मुझको उन पर दया भी आती थी. क्योंकि एक बार उनकी तबियत खराब हो गयी थी तब मुझको बुलाकर बड़े धीरे से बोली थी, "मिनी अगर मैं मर गयी तो क्या तुम अपनी मम्मी के पास चली जाओगी?" उसी समय मैंने अपने मन में एक प्रतिज्ञा कर ली थी कि जब तक मैं उनके पास में हूँ, तुमको मैं पत्र नहीं लिखूंगी.'

इसीलिए जब-जब तुम मुझे मिलने आयीं मैं मूर्ति

बनी खड़ी रही. तुमको नहीं मालूम कि मेरे दिल में कितनी ललक रहती थी कि तुमसे लिपट कर खूब रोऊं. पर मैं इतना भी नहीं कर पायी.

अब मुझे यही डर है कि तुमसे मिलने पर तुम मुझे पहचान पाओगी या नहीं. इसीलिए अपने दोनों की यह फ़ोटो भेज रही हूँ जिससे तुम मुझे ज़रूर पहचान लोगी.

मैं यह पत्र यहीं समाप्त कर रही हूँ. बाक़ी जो कुछ है वह मैंने एक डायरी में नोट कर दिया है. वह डायरी मम्मी तुम्हीं पढ़ सकती हो. वह शायद मम्मी मेरे जीवन की अहम भेंट होगी जो मैं तुम्हें दूंगी. बाक़ी मिलने पर.

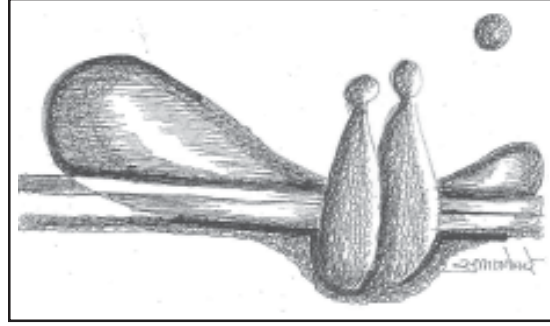
तुम स्टेशन आ सको तो आना, नहीं तो हम लोग स्वयं तुम्हारा मकान खोज लेंगे. ज़्यादा परेशान न होना. नाना-नानी को प्रणाम

आपकी  
मिनी.'

पत्र पढ़कर सीमा को असीम शांति मिली और उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था कि वह किसको यह ख़बर बताये. उस समय तक रात और बढ़ गयी थी. एक मन किया कि वह ऑटो पकड़ कर अपने मां-बाप के घर जाये और उनको यह ख़बर बताये. पर जब उसने अपनी खिड़की की तरफ़ देखा जहाँ से किसी घर से लाइट की रोशनी उसके घर में छन कर आ रही थी तो उसने सोचा कि अकेले बाहर निकलते ही कोई उसको ग़लत न सोच ले. उसे हिम्मत नहीं हुई. वह उठी, उसने मिनी की फ़ोटो थोड़ी सीधी की और कमरे की सफ़ाई करने लगी. चाय की तलब को उसने अंदर दबा लिया था. उसने सोचा सुबह उठकर सबसे पहले तैयार होकर खाने-पीने की व्यवस्था करेगी. ताकि मिनी को लेने ठीक साढ़े नौ बजे तक वह स्टेशन पहुंच जाये.

जब वह स्टेशन पहुंची तो गाड़ी स्टेशन पर आ रही थी. वह राजधानी के डिब्बों को ऐसे देख रही थी कि जैसे सभी में उसकी मिनी बैठी हो, पर राजधानी के एयरकंडीशंड डिब्बों की खिड़कियों से कुछ दिखाई नहीं दे रहा था. इसलिए वह चुपचाप बाहर निकलने वाले गेट के पास आकर खड़ी हो गयी थी. गाड़ी आकर पूरी तरह रुक गयी थी, उसका दिल धड़कने लगा था यह बात सोच कर कि मिनी को वह न पहचान पायी तो ... वह उसकी फ़ोटो साथ लायी थी.

वह बार-बार फ़ोटो की तरफ़ देखती थी, फिर बार-



बार निकलने वाले यात्रियों की तरफ़ देखती थी.

उसी समय उसने दूर से देखा कि एक सुंदर-सी लड़की अपने पति के साथ खड़ी किसी का इंतज़ार कर रही है. वह लपकती हुई वहाँ पहुंची और हिचकते उसने उस लड़की से पूछा, “तुम्हारा नाम मिनी है.”

नाम सुनते ही मिनी अपनी मम्मी से लिपट गयी थी. उसका पति उन दोनों के अपार स्नेह को देखता खड़ा रह गया. सीमा की आंखों से अविरल आंसुओं की धार बह रही थी. उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मिनी ऐसे और इस तरह उसे मिलेगी.

थोड़ी देर बाद दोनों अलग हुई तो सीमा को ऐसा लगा कि उसका सारा अतीत एक दम से सामने आकर खड़ा हो गया हो जिसके सहारे उसका भावी जीवन अपने आप कट जायेगा. उसने उसके पति के कंधे पर हाथ रख कर कहा, “बेटे तुम कितने अच्छे हो जिसने मेरी मिनी को मुझसे मिला दिया. नहीं तो यह रेत उड़ते-उड़ते रेगिस्तान बन जाती.”

उसके पति रघुकुल ने मुस्कराते हुए कहा — “मम्मी कैसी बातें करती हो, हम लोग तो हैं आपके लिए. आप ऐसा मत सोचिए.” फिर दोनों ने अपने-अपने हैंड बैग उठाये, जैसे अपना बोझा स्वयं उठाने के लिए तैयार हों और मम्मी के साथ आगे बढ़ने लगे — प्लेटफ़ॉर्म से घर के लिए चलते समय सीमा को लगा कि कैसे वह अपने अतीत से उगी हुई शाख के सहारे चल रही हो भविष्य की ओर.”

श्रीमती ममता त्यागी,

सुपुत्री डॉ. गायत्री कमलेश्वर,

५२, पिरामिड एपार्टमेंट, जे. पी. रोड,

वसोवा, मुंबई-४०००६१.

मो.: ९६१९१२६४१७.

## पहाड़ों की नर्म धूप

✍ नीरजा हेमेट

**मे**री आंखें उसे ढूँढ़ रही थीं. उसे कहीं न पा कर मेरी व्याकुलता बढ़ती जा रही थी. न जाने क्यों? मैं उसे ठीक से जानता तक नहीं. उसे ठीक से जानना तो दूर, अभी उसका नाम तक नहीं जानता, फिर भी उसकी प्रतीक्षा कर रहा था. मैंने कलाई घड़ी पर दृष्टि डाली, नौ बज रहे थे. मैं समय से आधे घंटे पूर्व ही कार्यालय आ गया था. कार्यालय के बाहरी कक्ष में जो कि स्टाफ़ रूम है, वहां बैठ कर उसकी प्रतीक्षा करने लगा. इस समय एक-एक क्षण व्यतीत करना दुरूह लग रहा था, अतः स्टाफ़ रूम से बाहर निकल कर लॉबी में आ गया. लॉबी में खड़े होकर मैं चारों तरफ़ देखने लगा. इस शहर लेह में मैं पहली बार आया हूँ. दूर-दूर तक पहाड़ों की छोटी-बड़ी शृंखलाओं के मध्य स्थित समतल घाटी में बसा प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर यह छोटा-सा खूबसूरत शहर लेह. मैं यहां खड़े होकर प्रकृति के अद्भुत सौंदर्य को भरपूर दृष्टि से देख ही रहा था कि मेरे पूरे शरीर में ठंड की वजह से सिहरन होने लगी.

ठंड के कारण यहां रुक पाना मुश्किल हो रहा था, मैं अंदर जाने की सोच ही रहा था कि सामने की पथरीली सड़क से वह पैदल आती दिखायी दी. बर्फीली हवाओं से बचने के लिए वह बार-बार अपना स्कार्फ़ ठीक कर रही थी. सड़क के दोनों तरफ़ फैले पथरीले मैदानों में उगे चीड़ व देवदार के ऊंचे वृक्षों के पत्ते भी मानो ठंड से कांप कर सिहर जा रहे थे. इस सर्द मौसम में वह मुझे किसी ऊष्मा से कम प्रतीत नहीं हो रही थी.

मेरे हाथ-पैर ठंड की वजह से कांपने लगे थे. मैं लॉबी पार करता हुआ कार्यालय कक्ष में आकर कुर्सी पर बैठ गया. कमरे में जल रहे हीटर के कारण कमरा बाहर की अपेक्षा गर्म था. यहां मुझे ठीक लगा. मैं मेज़ पर रखी फ़ाइलों को उठाकर पलटने लगा. किंतु मन ही मन मैं उसकी प्रतीक्षा भी कर रहा था. मैं जानता था कि यहां आने के पश्चात वह सीधे मेरे कक्ष में ही आयेगी. उसके सीधे मेरे

कक्ष में आने का कारण था वह यह कि वो मेरी पर्सनल सेक्रेटरी थी. इस कार्यालय में काम करने वाले कर्मचारियों की उपस्थिति रजिस्टर को उठाकर मैं देखने लगा. मैंने अभी कल ही यहां ज्वाइन किया है अतः मुझे यहां कार्यरत किसी भी कर्मचारी का नाम नहीं ज्ञात है. रजिस्टर देखने का एक कारण यह भी था कि मुझे उसका नाम जानने की भी उत्सुकता थी. कल सभी सहकर्मियों से परिचय तो हुआ पर मैं उसका नाम नहीं जान पाया. अब इस रजिस्टर से उसका नाम ज्ञात हुआ है. तो मेरी पर्सनल सेक्रेटरी का नाम शिवांगो है.

कुछ ही देर बाद वो मेरे कक्ष में दाखिल हुई. उसने मुस्कराते हुए मेरा अभिवादन किया. मैं उसके अभिवादन का प्रत्युत्तर देना भूल कर उसके चेहरे की खूबसूरती में विलीन-सा हो गया. वो प्रत्युत्तर की आशा में कुछ क्षण मेरी ओर देखती रही तत्पश्चात कार्यालय के कार्यों में व्यस्त हो गयी.

मैं यहां लेह के आकाशवाणी केंद्र में लखनऊ से स्थानांतरण के पश्चात कल ही आया हूँ. लेह की कठोर ठंड मैदानी क्षेत्र के लोगों के लिए कष्टप्रद होती है. अतः कोई यहां आना नहीं चाहता. किंतु नौकरी की कुछ विवशताएं भी होती हैं जिनके कारण हमें दुरूह क्षेत्रों में भी स्थानांतरित होना ही पड़ता है. मैं दो वर्ष के लिए यहां आया हूँ. इसमें समय-समय पर हमें कुछ लंबी अवधि का अवकाश भी मिलेगा ताकि हम अपने परिवार के पास जा सकें.

यहां ठंड होती है यह तो मैं जानता था पर यहां की इतनी कठोर ठंड से अनभिज्ञ था. पहली बार ही तो मैं इस शहर में आया हूँ. जो दैनंदिन कार्य हम मैदानों में रहनेवाले लोग ठंड में भी सरलता से कर लेते हैं जैसे ब्रश करना, मुंह धोना, नहाना आदि पानी से होनेवाले वो सभी कार्य मुझे प्रथम दिन ही अत्यंत दुरूह लगे. खान-पान में भिन्नता तथा दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं की कम अथवा दुगनी क्रीम पर उपलब्धता भी हमें यहां दिख रही थी. आज प्रथम दिन ही कार्यालय आया तथा आज ही सोचने लगा कि कैसे



एम. ए. (हिंदी साहित्य), बी. एड.;

**: प्रकाशन :**

काव्य संग्रह - 'स्वप्न', 'मेघ, मानसून और मन';  
कथासंग्रह - 'अमलतास के फूल', 'जी हां, मैं लेखिका हूँ'.  
हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं : अमर उजाला, जनसत्ता,  
वागर्थ, कादंबिनी, आजकल, नेशनल दुनिया, अक्षर-पर्य, अंग  
चम्पा, किस्सा, संभाव्य, जनपथ, हरिगंधा (हरियाणा साहित्य  
अकादमी द्वारा प्रकाशित पत्रिका), जनसंदेश टाइम्स  
लखनऊ, डेली न्यूज़ एक्टिविस्ट लखनऊ, साहित्य दर्पण, बाल  
वाणी (उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा प्रकाशित पत्रिकाएं),  
शब्द सरिता, प्रगति, रेल रश्मि, इत्यादि में कविताएं,  
कहानियां, बाल सुलभ रचनाएं एवं सम-सामयिक विषयों पर  
लेख प्रकाशित. रचनाएं आकाशवाणी से भी प्रसारित.

**: अभिरूचियां :**

पठन-पाठन, लेखन, अभिनय, रंगमंच, पेंटिंग एवं सामाजिक  
गतिविधियों में रुचि.

**: संप्रति :**

शिक्षिका (लखनऊ, उ. प्र.)

ये दो वर्ष व्यतीत होंगे? मन में शीघ्र लखनऊ वापस जाने का विचार प्रबल होने लगा.

शिवांगो मेरी मेज़ के समीप खड़ी थी. उसके हाथों में फ़ाइलें थीं. मैंने लखनऊ वापस जाने के विचारों पर विराम लगाते हुए इस समय कार्यालय के कार्यों में ध्यान लगाना ही उचित समझा. मैंने शिवांगो को अपने सामने की कुर्सी पर बैठने का संकेत किया. मुझे यह ठीक नहीं लगा कि वह मेरे समक्ष खड़ी रह कर कार्यालय के कार्यों का निस्तारण कराये. वह मुस्कराती हुई थोड़ी झिझक के साथ मेरे सामने बैठ गयी. शिवांगो आज भी उतनी ही आकर्षक लग रही लग रही थी जितनी कल लगी थी. पारदर्शी गोरा रंग, पतले गुलाबी होंठ, लेह के मूल निवासियों-सी खूबसूरत आंखें व नाक. सब कुछ आकर्षक. साधारण ढंग से बंधा रेशम से

चमकीले, सुनहरे बालों का पोनीटेल उसके सौंदर्य को और बढ़ा रहा था. कार्यालय के कार्य करते-करते बीच-बीच में मैं उसे देख भी ले रहा था. सचमुच शिवांगो बहुत खूबसूरत थी.

विपरीत प्राकृतिक वातावरण में रहते हुए मुझे एक सप्ताह हो गया. धीरे-धीरे शिवांगो मुझसे खुलने लगी थी, किंतु बहुत नहीं मात्र औपचारिकता तक. उसने मुझे बताया कि उसका घर इस कार्यालय से करीब आधा कि. मी. दूर उस कस्बाई बाजार में है जो यहां से दिखता है. वह घर से पैदल ही कार्यालय आती-जाती है. मेरे साथ यहां आये मेरे तीन अन्य सहकर्मी एक माह पश्चात मिलने वाले अवकाश में घर जाने की, पत्नी-बच्चों से मिलने की चर्चाओं व तैयारियों में व्यस्त थे. किंतु मैं... मेरे यहां रुकने अथवा शीघ्र लखनऊ जाने की कोई वजह नहीं है. मैं अविवाहित हूं. मेरे उग्रदराज माता-पिता मेरे विवाह की चिंता में अपने दिन व्यतीत कर रहे हैं. ऐसा नहीं कि मेरी अभी विवाह की उम्र नहीं हुई है बल्कि मेरी विवाह की उम्र अब निकलती जा रही है. मैंने अब तक न जाने विवाह क्यों नहीं किया? मेरे माता-पिता के अनुसार मुझे कोई लड़की पसंद ही नहीं आती.

घर जाने की मुझे कोई विशेष उत्सुकता नहीं थी अपने अन्य सहकर्मियों की भांति. किंतु लेह का बर्फीला सर्द मौसम मुझे परेशान-सा कर रहा था, अन्यथा अन्य कोई कारण नहीं था मेरे लखनऊ जाने का.

मेरे दिन कार्यालय के कार्यों में व्यतीत होते जा रहे थे... जब शिवांगो मेरे इर्द-गिर्द रहती तो मैं उसके सौंदर्य में खोया-सा. शनैः-शनैः मुझे शिवांगो की आदत-सी हो गयी. कार्यालय पहुंच कर मैं उसकी प्रतीक्षा करने लगता. उसके घर से कार्यालय आने वाली सड़क मुझे अच्छी लगती. किसी कारण वश उसके आने में विलंब होने पर मैं बाहर सर्द हवाओं में खड़े होकर उसकी प्रतीक्षा करता तथा मेरी आंखें मार्ग पर उसे ढूंढा करतीं. उसके दिखायी देने तक लेह की खूबसूरत घाटियों में स्वयं को डुबाये रहता.

शिवांगो अब मेरे साथ थोड़ी-थोड़ी खुलने लगी थी. एक दिन उसे मैंने बता दिया था कि मैं अविवाहित हूं. मेरी उम्र इस समय चालीस वर्ष की हो रही थी. मैं इस बात से अनभिज्ञ नहीं था कि मेरी विवाह की उम्र निकलती जा रही है. मुझे देख कर कोई भी मेरी उम्र का अनुमान सरलता से लगा सकता था किंतु शिवांगो को देखकर उसकी उम्र का अनुमान लगाना कठिन था. सरकारी अभिलेखों में दर्ज

उसकी बत्तीस वर्ष उम्र मुझे ज्ञात न होती तो मैं यही समझता कि वह इक्कीस-बाईस वर्ष की युवती है।

आज एक माह पूरा हो गया है मुझे यहां आये हुए। मुझे तथा मेरे साथ आये अन्य तीनों सहकर्मियों को आज घर जाने के लिए एक माह का अवकाश मिल गया। मैं और वो सभी एक साथ लेह से चल चुके हैं। उन्हें अपने शहर भोपाल, मुरादाबाद इत्यादि व मुझे लखनऊ पहुंचना है। लेह से आने के बाद लखनऊ में आज मेरी पहली शाम है। मां-पापा से मिलने व उन्हें लेह की टंड का हाल बताने के बाद मेरे पास शेष कुछ न था करने को। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे मैं सैकड़ों किलोमीटर दूर लेह में स्वयं को छोड़ आया हूँ शिवांगो के पास।

मैं जो कि लेह में रुकना नहीं चाहता था, अब स्वयं को लेह की स्मृतियों से मुक्त नहीं कर पा रहा हूँ। लखनऊ मुझे अनजाना शहर लगने लगा है। मैं शीघ्र लेह पहुंच जाना चाहता हूँ किंतु मैं यह भी जानता हूँ कि ऐसा संभव नहीं है। न तो मेरे पास पक्षियों की भांति पंख हैं न आवागमन की सरल सुविधा। आगामी माह में लेह जाने हेतु ट्रेन में आरक्षण हो चुका है। तिथि तय है। आजकल बिना आरक्षण के ट्रेन में यात्रा करना सरल नहीं है। विशेषकर दूर की यात्राओं के लिए आरक्षण कर के सफ़र करना ही बेहतर होता है। दूरभाष द्वारा शिवांगो से कभी-कभी बातें हो जाती हैं। उसके संयमित स्वभाव के कारण बातों का विषय कार्यालय के काम-काज तक ही सीमित रहता है फिर भी उसकी आवाज़ उसे मेरे पास होने का आभास कराती है।

कभी-कभी मैं सोचता कि क्या शिवांगो के हृदय में भी मेरे लिए ऐसे ही प्रगाढ़ प्रेम की अनुभूति होती होगी जिस प्रकार की अनुभूति मैं करने लगा हूँ। मुझे अपनी ओर देखते देख उसके चेहरे पर फैल जाती वो लज्जायुक्त लालिमा तथा यदाकदा उसके होठों पर आ जाती वो स्नेहसिक्त हंसी उसके प्रेम को ही तो व्यक्त करते थे। शिवांगो भी अवश्य मुझसे प्रेम करने लगी होगी और वो भी इस समय वहां मेरी अनुपस्थिति में मुझे स्मरण कर दिन व्यतीत कर रही होगी। शिवांगो ने अपना प्रेम मुझसे भले ही व्यक्त न किया हो, वह भी मुझसे प्रेम अवश्य करती होगी। मैंने निश्चय कर लिया कि इस बार मैं जाऊंगा तो शिवांगो के समक्ष अपना प्रणय प्रकट करूंगा तथा उसके हृदय की भावनाओं को भी स्पष्ट जानने का प्रयत्न करूंगा।

मेरे अवकाश के दिन-रात व दिन-रात के प्रत्येक प्रहर शिवांगो को स्मरण करने में व्यतीत हो गये। छुट्टियां समाप्त हो गयीं तथा लेह जाने का दिन भी आ गया।

आज मैं लेह जाने वाली ट्रेन में बैठा सुख-दुख मिश्रित भावों की अनुभूति कर रहा हूँ। ऐसा लग रहा है जैसे मैं अपने वृद्ध माता-पिता को छोड़ कर शिवांगो के पास सदा के लिए चला जा रहा हूँ। मन में अजीब सी भावनाएं हिलोरें ले रही हैं। कदाचित यह कोई पीड़ा है? मैंने सुना था कि प्रेम पीड़ा भी देता है तो क्या मेरा यह प्रगाढ़ प्रेम मुझे पीड़ा की अनुभूति भी दे रहा है।

जैसे-जैसे लेह मेरे समीप आता जा रहा है मैं गर्म वातावरण से निकल कर टंड की सुखद अनुभूति कर रहा हूँ। अंततः आज शाम के आठ बजे मैं लेह पहुंच गया हूँ। अपने कक्ष में प्रवेश करते ही मुझे लगा कि मेरा कमरा अत्यंत ठंडा है, इतना ठंडा कि इसमें रहने की कल्पना मात्र से मेरा मन उद्वेलित होने लगा। एक माह के अंतराल में मुझे स्मरण ही नहीं रहा कि मुझे कमरे को गर्म करने के लिए आवश्यक उपकरण रूम हीटर को चलाना था। हीटर से कमरा गर्म किये बिना यहां रहना अत्यंत कठिन है। यह सब करके मैंने अव्यवस्थित कक्ष को थोड़ा-सा व्यवस्थित किया। होटल के रेस्तरां से भोजन का ऑर्डर दे कर मैंने फ्रेश होने के लिये बाथरूम में प्रवेश किया। पानी को बर्फ की शकल में देख कर इस ठंड में भी मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मैंने बाथरूम में भी विद्युत चालित गर्म प्लेट ऑन की तथा हाथ मुंह धोकर कमरे में आ गया। मैं इन दैनिक कार्यों में दक्ष होना चाह रहा था। मैं लेह की जीवनचर्या में दक्ष होना चाह रहा था। शीघ्र प्रातः होने की प्रतीक्षा में कब आंख लगी मुझे ज्ञात नहीं।

दूसरे दिन मैं समय से पूर्व ही कार्यालय पहुंच गया, पूर्व की भांति। कक्ष से निकल बरामदे में खड़ा होकर शिवांगो की प्रतीक्षा करने लगा। मेरी दृष्टि बार-बार उस पथ पर उठ जाती जहां से शिवांगो को आना था। कुछ ही समय बाद शिवांगो मुझे आती दिखायी दी। वही सौंदर्य, वही भोलापन उसके चेहरे पर व्याप्त था। मुझे उसकी चाल कुछ सुस्त व धीमी लगी। तो क्या यहां शिवांगो भी मेरी कमी को अनुभव कर रही थी। कहीं वह भी तो मुझसे प्रेम नहीं करती? आखिर वह इतनी उदास क्यों है? अनेक अनुत्तरित प्रश्नों के साथ लेह में मेरे दो दिन और व्यतीत हो गये। मैं अपने हृदय की बात



शिवांगो से बताने का साहस नहीं जुटा पाया.

आज प्रातः से ही आकाश में मेघों ने डेरा डाल दिया था. उमड़ते-धुमड़ते श्याम बादलों को देख कर भारी बारिश होने की आशंका प्रतीत हो रही थी. मध्याह्न पश्चात बादलों ने बरसना प्रारंभ कर ही दिया. ठंडी हवाएं कुछ और ठंडी हो चलीं. शिवांगो ने लांग कोट के साथ गले में ऊनी स्कार्फ बांध रखा था. बारिश की इस ऋतु में वह मुझे और आकर्षक लग रही थी. मैं कार्यालय के कार्यों को करते-करते बीच-बीच में दृष्टि बचा कर उसे देख लिया करता था. विगत एक माह से यह करना मेरे स्वभाव में समाहित हो चुका था.

कार्यालय बंद करने का समय हो गया, किंतु बारिश बंद नहीं हुई. बारिश कुछ धीमी हुई तो कार्यालय के लोग अपनी सुविधाओं-साधनों से धीरे-धीरे अपने घरों को जाने लगे. शिवांगो अपने घर से पैदल आती थी, उसे जाना भी पैदल ही था. अतः वह बारिश के रुकने की प्रतीक्षा कर रही थी. मैंने आज तक उसके घर के किसी सदस्य को नहीं देखा था जिससे मैं यह अनुमान लगा सकूँ कि घर से उसे कोई लेने आ जायेगा. मुझे शिवांगो के घर पहुंचने को लेकर चिंता होने लगी. धीमी होती बारिश पुनः तेज हो गयी. शिवांगो कॉरीडोर में खड़ी तेज होती जा रही बारिश तथा खाली होते जा रहे कार्यालय को चुप-चाप देख रही थी. उसके चेहरे पर चिंता की रेखाएं स्पष्ट होने लगी थीं. तत्काल मुझे युक्ति सूझी, मैंने कार्यालय की गाड़ी निकलवायी तथा शिवांगो को बुला कर उसे घर छोड़ने का प्रस्ताव रखा. मौसम के बिगड़ते मिजाज को देख कर उसने वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया व गाड़ी मैं बैठ गयी.

मैं गाड़ी चला रहा था. शिवांगो मेरी बगल की सीट पर बैठी थी. उसके साथ बारिश में भीगा यह छोटा-सा सफ़र मुझे भला लग रहा था. ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे इस शहर को, इस मार्ग को आज मैं प्रथम बार देख रहा हूँ. सब कुछ नया-सा. पथरीले मार्ग में स्थान-स्थान पर बिखरी हरियाली विपरीत परिस्थितियों में ताल-मेल का अनूठा दृश्य उपस्थित कर रही थी. मेरी इच्छा हो रही थी कि शिवांगो के साथ मेरी यह यात्रा इसी प्रकार चलती रहे. शिवांगो विचारमग्न मेरे समीप बैठी थी. मैं उसकी तरफ़ देख कर यह जानने का प्रयत्न करना चाह रहा था क्या उसे भी मेरे समीप बैठना उतना ही अच्छा लग रहा है जितना मुझे. यात्रा सचमुच

सुखद थी. मार्ग के दोनों ओर स्थान-स्थान पर बने सब्जियां और फल उगाने के लिए बने कृत्रिम वातानुकूलित घरों में बंद प्राकृतिक हरियाली बादलों व पर्वतों के मध्य अत्यंत आकर्षक लग रही थी.

शिवांगो का भावशून्य चेहरा देखकर मेरे भीतर भी कुछ असामान्य-सा अनुभव होने लगा. मेरे हृदय में शिवांगो के समक्ष अपने प्रेम के प्रकट करने की इच्छा बलवती होने लगी. प्रेम से सिक्त हवाएं भी यही संकेत कर रही थीं.

चढ़ते-उतरते मार्गों व भावाभिव्यक्ति के उहापोह के मध्य शिवांगो का घर आ गया. मैंने गाड़ी उसके घर के गेट पर खड़ी कर दी. शिवांगो गाड़ी से उतर गयी. उसने मेरी तरफ़ देखे बिना ही मुझे अंदर आने के लिए संकेत किया. मुझे लग रहा था कि वह घर के सदस्यों के समक्ष मुझे ले कर नहीं जाना चाहती है. इसका कारण अपने प्रेम को अभी सबके समक्ष व्यक्त न करने की उसकी इच्छा है या कोई और वजह? मैं अपनी इस सोच पर मन ही मन मुस्करा पड़ा. तत्क्षण मेरे मन में यह विचार भी आया कि मैंने शिवांगो से या शिवांगो ने मुझसे अभी तक अपने प्रेम को शब्दों के माध्यम से व्यक्त ही नहीं किया है.

मैं शिवांगो के पीछे-पीछे चल कर उसके ड्राइंग रूम में आ गया. मुझे अपने ड्राइंग रूम में बैठा कर शिवांगो अंदर चली गयी. अत्यंत कलात्मक ढंग से व्यवस्थित छोटे-से ड्राइंग रूम में पर्वतीय कला की साज-सज्जा परिलक्षित हो रही थी. मैं चुपचाप बैठा ड्राइंग रूम में साज-सज्जा को बड़े ही मनोयोग से निहार रहा था कि एक छः-सात वर्ष का बालक ड्राइंग रूम में आकर खड़ा हो गया. वह मुझे आश्चर्य से देख रहा था. बच्चा बड़ा ही प्यारा-सा था. बिलकुल शिवांगो की तरह. कुछ क्षण मुझे यूँ ही देखने के पश्चात वह अंदर चला गया. मैं सोचने लगा था कि कहीं यह शिवांगो का छोटा भाई तो नहीं है. मुझे शिवांगो के घर के सदस्यों की जानकारी भी नहीं है. अतः मैंने अनुमान लगाना छोड़ दिया.

कुछ ही देर में शिवांगो मेरे समक्ष खड़ी थी. उसके पीछे वह बच्चा भी था, जो उसके लांग कोट के पीछे कभी छुप जा रहा था, तो कभी प्रकट. शिवांगो के हाथ में ट्रे थी जिसमें चाय के दो प्याले रखे थे. शिवांगो मेरे सामने सोफ़े पर बैठ गयी व शालीनता से मुस्कराते हुए एक प्याला मेरी ओर बढ़ा दिया. वह बच्चा भी उसकी बगल में आकर बैठ गया था. मैं धीरे-धीरे चाय पीने लगा. मैंने सुना था कि

लघुकथा

सुयोग्य लड़की

✍ कृष्ण चंद्र महादेविया

दो सयाने बहू बनाने के लिए लड़की दूढ़ने लगे थे. लड़की बुद्धिमती और काम-काज में निपुण हो. चलते-चलते वे एक घर के पास पहुंचे, जहां एक लड़की आंगन में रसोई बना रही थी. वृद्धों को वह पसंद आ गयी किंतु उसकी परीक्षा लेना अभी शेष था.

एक सयाने ने पूछ ही लिया — “बेटी, तेरी माता कहां है?”

“वह एक की दो करने गयी है.”

“तेरे पिता कहां गये हैं?” दूसरे सयाने ने पूछा.

“पानी पकड़ने गये हैं.” लड़की ने स्नेह से कहा.

“और भाई कहां गया है?”

“वह पागल खाने गया है.”

“तुम क्या कर रही हो?”

“मैं सौ मार रही हूं और एक को परख रही हूं.”

दोनों सयानों ने समझ लिया कि यह लड़की बहुत

बुद्धिमती है. लड़की ने उन्हें बैठने के लिए चटाई दी. वे बैठ गये.

लड़की की माता एक की दो करने मतलब उड़द दलने गयी थी. पिता पानी पकड़ने मतलब छप्पर छाने गये थे. भाई पागलखाने गया है यानी शराब पीने गया है. लड़की के सौ मारने और एक परखने का अर्थ था कि वह चावल पका रही है. एक चावल के दाने को देख कर वह पूरे चावल पकने को परख रही है.

दोनों सयानों की आंखें मिलीं और यह लड़की उन्होंने पसंद कर ली. अब इसके माता-पिता से इसे अपने बेटे की शादी के लिए मांग करनी है और आज ही ब्याह के लिए पक्की जुबान करनी है. दोनों सयानों ने परामर्श किया.

✍ पत्रालय महादेव, सुंदरनगर,  
जिलामंडी (हि. प्र.)-१७५०१८

पहाड़ों पर रहने वाले चाय बहुत अच्छी बनाते हैं. सचमुच, चाय बहुत अच्छी बनी थी.

कमरे में पसरे सत्राटे को बाहर हो रही मूसलाधार बारिश की आवाज़ें तोड़ रही थीं. कमरे में व्याप्त सत्राटा मुझे अच्छा नहीं लग रहा था. इससे उबरने का प्रयत्न करते हुए मैं शिवांगो से पूछ बैठा, “घर में कौन-कौन है?”

शिवांगो कुछ क्षण खामोश रही, तत्पश्चात कमरे की खिड़की से दिखायी देने वाले गेट की तरफ देखते हुए बोल पड़ी, “मेरे पापा हैं.... बस्स.” कह कर वह चुप हो गयी.

“वह घर में नहीं हैं क्या?” मैं पूछ बैठा. हालांकि यह पूछते हुए मुझे कुछ झिझक-सी हुई कहीं शिवांगो कुछ गलत न समझ बैठे.

“नहीं, वह इस समय दुकान में होंगे.... उनकी एक छोटी-सी जनरल मर्चेट की दुकान है ... यहीं पर ... बाज़ार में.” रुक-रुक कर उसने बात पूरी की.

मेरी चाय खत्म हो चुकी थी. बाहर पानी का शोर थम नहीं रहा था. मुझे भीगने की कोई चिंता नहीं थी, न ही शीघ्र घर जाने की. मेरे पास कार्यालय की गाड़ी है. मैं आज

शिवांगो के बारे में कुछ और जानना चाहता था.

“मां नहीं हैं. मां को गुजरे छ: वर्ष हो गये हैं.” बच्चे के सिर पर हाथ फेरते हुए शिवांगों ने कहा.

“ये तुम्हारा छोटा भाई है...”

“नहीं, यह मेरा बेटा है... चवांग.” मेरी तरफ स्थिर दृष्टि से देखते हुए शिवांगो ने कहा.

लेह की कठोर टंड में मैं कांप उठा व मेरे माथे पर पसीने की बूंदें छलक पड़ीं. मेरे भीतर न जाने कैसी व्याकुलता भरती जा रही थी.

मैं बंद खिड़की के शीशे से बाहर देखने लगा. मुझे ऐसा लगने लगा जैसे कि इस स्थान को चारों तरफ से घेरे ऊंचे पर्वतों के शिखरों की बर्फ पिघल कर मेरे अंदर बहती जा रही है. काश! यह बर्फ़ीला पानी मेरी आंखों से अश्रु बन कर बह पड़ता, किंतु नहीं, मेरी भावनाएं घनीभूत होकर मेरे हृदय में भरती जा रही थीं. हृदय पर बढ़ता जा रहा बोझ कैसे हल्का होगा? मैंने सुना है कि यहां के फूचे ग्लेशियर से निकलते चश्मे का पानी यहां के निवासियों को जीवन प्रदान करता है. वह यहां का जीवन तत्व है. मेरे जीवन में

भी कोई ऐसा स्रोत फूट पड़े जो मुझे कुछ श्वास दे सके. मेरे हृदय का स्पंदन थम-सा रहा था.

मैंने स्वयं को किसी प्रकार संयत किया. अनेक प्रश्न अनुत्तरित से दूर खड़े देवदार के लंबे वृक्षों की भांति मेरे समक्ष खड़े थे. मैं जानता था कि शिवांगो इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए विवश नहीं है. क्योंकि उसने मुझसे प्रेम निवेदन या प्रेम प्रतिज्ञा नहीं की है. मैं भी तो अपनी भावनाएं उसे अवगत नहीं करा पाया था. मैं अपनी पुरुष सत्तात्मक सोच से बाहर कब निकल पाया था? उसके द्वारा पहल करने की आशा में मेरा प्रतीक्षारत रहना मेरी पुरुषवादी सोच का ही तो प्रतीक था.

बाहर बारिश की ध्वनि तेज़ होती जा रही थी. तापमान हिमांक बिंदु से काफ़ी नीचे चला गया था किंतु मेरे भीतर नहीं.

मेरे अंदर एक उत्सुकता बढ़ती जा रही थी. यह सही थी या नहीं मुझे ज्ञात नहीं. मैं शिवांगो के पति को एक बार देख भर लेना चाहता था. चवांग वहां से उठकर भीतर चला गया था. कमरे में मैं और शिवांगो ही थे. जो साहस मुझे अब से पूर्व कर लेना चाहिए था, वो साहस मैं अब करने जा रहा था.

अपनी भावनाएं छिपाते हुए मैं शिवांगो से पूछ बैठा, “तुम्हारे पति दिखाई नहीं दे रहे हैं?”

शिवांगो खामोश थी.

“क्या वे यहां नहीं रहते?... बाहर रहते हैं क्या...?” मैंने कुछ क्षण रुक-रुक कर कई प्रश्न एक साथ जानने चाहे.

मेरे कई प्रश्नों को एक साथ सुनकर शिवांगो ने खामोशी पर विराम लगाते हुए तत्क्षण उत्तर दिया, “वो हमारे साथ नहीं रहते.”

मुझे ऐसा लगा जैसे शिवांगो को सब कुछ बताने की उतनी ही शीघ्रता है जितनी मुझे जान लेने की.

“क्यों?”

“क्योंकि वह श्रीनगर नहीं छोड़ सकता था और मैं लेह.”

उसकी बातें मुझमें अजीब-सी अनुभूति का संचार कर रही थीं. सुखद या कुछ अन्य मैं समझ नहीं पा रहा था.

“विवाहोपरांत भी तुम्हारी इच्छा नहीं थी उसके साथ श्रीनगर जाने की.” न जाने किस लिए मैंने शिवांगो का मन टटोलना चाहा.

“नहीं, पापा को यहां अकेला नहीं छोड़ सकती थी. मैं लेह नहीं छोड़ सकती.”

“मुझे मैदानों में रहना नहीं आता.” कुछ क्षण रुक कर शिवांगो ने अपनी बात पूरी की.

“वह कभी नहीं आता... चवांग से मिलने?” मैंने पुनः पूछा.

“नहीं, छः वर्ष हो गये.... मुझे ठीक से स्मरण नहीं वह कब आया था.”

“वह हमें विस्मृत कर चुका है और हम उसे. ऐसा मैंने स्वेच्छा से किया है. मुझे उससे कोई शिकायत नहीं.” अपनी बात पूरी कर शिवांगो चुप हो गयी.

मैं बारिश की फुहारों व पानी की संगीत लहरियों से होता हुआ वहां से चला आया. मार्ग में गाड़ी चलाते हुए मुझे इस कठोर ठंड में भी ठंड की अनुभूति नहीं हो रही थी. जैसे मैं यहां रहने का अभ्यस्त हूं. शिवांगो के घर मेरी कोई वस्तु छूट गयी थी. मेरा चश्मा भी.

दिन-प्रतिदिन समय के आगे बढ़ते रहने के साथ ही साथ मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा था जैसे मैं शिवांगो के और समीप होता जा रहा हूं.

मौसम ने करवट ले ली है. पहाड़ों से अठखेलियां करते बादलों के पीछे से सूर्य की किरणें छन-छन कर बर्फ के मैदानों को स्वर्णिम कर रही हैं.

मैंने अपने माता-पिता की सहमति से शिवांगो के साथ लेह के एक बौद्ध मठ में बर्फ के फाहे से धवल, पवित्र अपने प्रेम को साक्षी मानते हुए विवाह कर लिया है. मैंने अपने माता-पिता को यह भी बता दिया है कि उनका बेटा ही उनके साथ रहेगा, उनकी बहू कुछ दूर रहकर उनके पास रहेगी.

□

मेरी बेटी सायमा बिल्कुल शिवांगो की तरह है. समझदार, शालीन व सुंदर. वह लखनऊ में अपने भाई चवांग के साथ मेरे पास रहती है. शिवांगो यदाकदा अवकाश के दिनों में हम सबसे मिलने आती रहती है. उसे मैदानों में रहना नहीं आता. सचमुच!

मुझे पर्वतों, घाटियों, बर्फ, देवदार व वहां के निवासियों से प्रेम करना आ गया है. क्योंकि मैं स्थानांतरण के उपरांत भी लेह आता-जाता रहता हूं. शिवांगो का संपूर्ण प्रेम मैदानों की ओर बहता है, फूचे ग्लेशियर से बहते मीठे चश्मे के जीवनदायी जल-सा.

✍️ 'नीरजालय', ५१०/७५,

न्यू हैदराबाद, लखनऊ-२२६००७

मो.: ९४५०३६२२७६.

ई-मेल : neerjahemendra@gmail.com

## कोटर वाली कक्का

✍ बृज मोहन

**क**क्का छोटी-छोटी खुशियां बांटते थे, परंतु कभी सोचा न था कि इतना बड़ा दुःख देंगे और दुःख के साथ मुझे सौगात भी दे जायेंगे।

हम सब उन्हें कोटर वाले कक्का कहते थे। कोटर वाले इसलिए कि जब वह यहां थे, तब रेलवे क्वार्टर में रहते थे। रेलवे क्वार्टर में रहना हमारे जैसे परिवार के लिए वैभव और गौरव से कम न था। रेलवे क्वार्टरों की साफ-सफ़ाई, बिजली-पानी, हवा, शौच आदि की व्यवस्था हमारे लिए किसी अच्छे सपने जैसी थी। हमारा घर तो रेल लाइन के किनारे बसी अवैध कच्ची बस्ती में कच्चा-टीन-टप्पर वाला था, जिसमें कमर झुकाये बिना घुसा नहीं जा सकता था। रेल की पटरियों के किनारे ही बस्ती के लोगों को नित्यकर्म के लिए सरलता से उपलब्ध स्थान था, जहां सुबह-सुबह पोखर के आस-पास उगी घास और झाड़ियों की अल्प ओट में अर्द्धनग्न स्त्री-पुरुष निर्लज्जता से विशेष मुद्रा में बैठे रहते थे।

तबादला होने के बाद कक्का जब कभी हमारे घर आते थे तो हमने उन्हें हमेशा मैली सदरी पहने देखा था। उनका चेहरा चितकबरा और खुरदरा था, जिस पर अक्सर हफ़्ते दस-दिन की बेतरतीब काली-सफ़ेद दाढ़ी उगी होती थी। उनकी आवाज़ खरखरी थी। फिर भी कक्का सबको पसंद थे। वह आते तो घर के सारे बच्चे बहुत खुश हो जाते, उनके इर्द-गिर्द रहते और इंतज़ार करते कि वह कब जायेंगे। उनके जाने की प्रतीक्षा इतनी बेसब्री से रहती कि मैं पूछ ही लेता, “कक्का, आप कब जायेंगे?”

“क्यों क्या करना है?” जवाब देने के बजाये कक्का मुस्कराते हुए उल्टे पूछ लेते तो मैं कुछ शर्मा जाता था। शायद, मेरे प्रश्न का आशय वह अच्छी तरह समझते थे।

मैं अपनी इच्छा दबा नहीं पाता और झिझकते हुए कह देता, “जब आप जाना तो हमें पैसे देकर जाना।”

जबकि कक्का बिना मांगे ही हमें पैसे देकर जाते थे।

जाते समय वह सभी बच्चों की हथेली पर पैसे रखते थे। वह जाने लगते तो बच्चे उन्हें घेर लेते थे। वह अपनी सदरी की जेब में जैसे ही सफ़ेद दागों वाले हाथ डालते तो बच्चे पहले से अपनी-अपनी हथेली उनके सामने फैला देते और वह हर एक की हथेली पर पैसे रखते जाते। किसी की हथेली पर पांच पैसे, किसी की पर दस पैसे, किसी को चवन्नी तो किसी को अठन्नी देते थे, सबकी उम्र के हिसाब से। हम सब खुश होते। मैं अपनी दोनों हथेलियां फैला देता तो दो अठन्नियां पा जाता। मैं सब बच्चों में बड़ा था। उस समय मेरी उम्र दस साल की रही होगी। पैसे पाते ही कुछ बच्चे बस्ती की खोखे वाली दुकान पर फ़ौरन दौड़ जाते और तुरंत खर्च करके गोल-मिठाई या अपनी पसंद की कोई भी खाने की चीज़ ले आते। मेरी मां दरवाज़े की ओट में खड़ी कातर निगाहों से उन्हें देखतीं। वह उन्हें भौजी कहते थे। पलटकर मां के पास आते। बटुए से दो रुपये का नोट निकालते और उनकी ओर धीमे से बढ़ाते। मां न-ना करते हुए मैली धोती के पल्लू से ढंके हाथ में नोट पकड़ लेतीं। उस वक़्त मां की आंखों में तरलता आ जाती।

उस समय पैसों का मूल्य होता था, रुपये-अठन्नी का तो और भी ज़्यादा। कक्का के इस तरह पैसे बांटने और मस्त रहने से सब समझते थे कि कक्का बहुत धनी हैं। हम अनुमान लगाते, उनके पास बहुत पैसा होगा।

उनके घर से जाने के बाद एक और खुशी मिलती थी, जिसका इंतज़ार हम सब बच्चे बेचैन होकर करने लगते थे। वह पैसेंज़र गाड़ी से जाते थे, जो हमारे घर के पीछे से गुज़रती थी। रेलवे स्टेशन नज़दीक होने से रेलगाड़ियां धीमी चाल में ही गुज़रती थीं और फिर पैसेंज़र गाड़ी तो जल्दी तेज़ गति नहीं पकड़ती थी। भाप के इंजन से गाड़ियां चलती थीं। धुआं उड़ाती, सीटी बजाती, छुकछुक का शोर मचाती गाड़ी की आवाज़ से सब बच्चे उत्साहित हो जाते और रेल लाइन के किनारे पहुंच जाते। जैसे ही कक्का दिखते सब



१९५१, झांसी (उ. प्र.)

शिक्षा - बी.ए. बैंकिंग प्रवीणता की परीक्षाएं उत्तीर्ण,

: प्रकाशन :

शुरुआती लेखन मोहन बृज के नाम से. पहली कहानी  
१९७४ में प्रकाशित.

हंस, कथाक्रम, साहित्य अमृत, वर्तमान साहित्य, अहा!  
जिंदगी, कथाबिंब, साक्षात्कार, अक्षरपर्व, माधुरी, सरिता,  
मुक्ता, गृहशोभा, सरस सलिल, गृहलक्ष्मी, प्राची, कदम, सोच  
विचार आदि पत्रिकाओं के अतिरिक्त जनसत्ता, दैनिक  
जागरण, दैनिक भास्कर, अमर उजाला, राजस्थान पत्रिका  
आदि के साप्ताहिक परिशिष्टों में समय-समय पर कहानियां  
प्रकाशित.

एक कहानी संग्रह 'इसे जन्म लेने दो' प्रकाशित व तीन  
रेडियो नाटक आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से प्रसारित.

: संप्रति :

बैंक ऑफ बड़ौदा से सेवानिवृत्ति के बाद  
अब कहानी-लेखन में सक्रिय.

हल्ला मचाते हुए हाथ हिलाते और कक्का हम लोगों के लिए फल लुढ़का देते, संतरे, अमरूद, आम या जो भी मौसमी फल उन्हें रेलवे स्टेशन पर मिलते. कक्का इस तरह से हम लोगों में खुशियां बांटते थे.

मैं थोड़ा बड़ा हुआ तो जाना कि कक्का पैसे वाले नहीं हैं. वह रेलवे में साधारण कर्मचारी थे और ऐसे स्टेशन पर तैनात थे, जहां सिर्फ पैसेंजर गाड़ी ही रुकती थी. अविवाहित रहने और कोई ऐब न होने से बचत कर लेते थे. अकेले ऊब जाते तो कभी हमारे यहां आ जाते थे.

मैं और बड़ा हुआ तो जाना कि कक्का हमारे सगे कक्का नहीं थे. दूर के रिश्तेदार थे. कक्का के आगे-पीछे ऐसा कोई नहीं था, जिसे वह अपना सगा-संबंधी मानते.

एक बार आये तो मेरी मां की तबियत ठीक नहीं थी. उन्हें कमजोरी लगती थी और थकान रहती थी. झींक-

झींककर घर-गृहस्थी का काम निबटाती थीं. कक्का को देखकर ज्यादा ही कराहने लगीं. कक्का ने उनके पास जाकर पूछा, “क्या हुआ भौजी?”

मां तो जैसे यह सवाल सुनने को आतुर ही थीं. आंखों में अतिरिक्त नमी लाकर मरी-सी आवाज़ में तुरंत बोलीं, “क्या बतायें, महीना भर हो गया, रुक-रुक कर बुखार आता है. कमजोरी लगती है. भूख नहीं लगती, जो थोड़ा-बहुत, खाओ-पियो तो उल्टी हो जाती है.”

“फिर बाल-बच्चा है क्या?” कक्का ने सीधे पूछ लिया.

मां चुप रह गयीं. शायद सिर्फ चुप्पी से ही अपना जवाब देना चाहती थीं.

“भौजी ऐसे तो तुम मर जाओगी. किसी डॉक्टर को दिखाया? कोई दवा खायी?” कक्का ने सहानुभूति जतायी.

“नहीं.” मां ने वैसी ही आवाज़ में उत्तर दिया.

“क्यों?”

मां ने आंखों में आंसू भरते हुए निरीह-सा उत्तर शिकायत भरे लहजे में लगभग दुखद गायन-सा करते हुए दिया, “कौन ले जाता अस्पताल. यहां हमारा ख्याल कोई नहीं रखता.”

कोई का मतलब, पिताजी. हमारे पिताजी बहुत सीधे और भीरु किस्म के थे. अस्पताल तो जैसे उनके लिए जी का जंजाल था. पैसे उनके पास रहते नहीं थे, जो कमाते थे, घर के लिए ही पूरे नहीं पड़ते थे. घर चलाने के लिए मां बीड़ियां बनाकर सहयोग करती थीं. बीमारी के कारण पूरी बीड़ियां भी नहीं बना पा रही थीं. पिताजी पहले मकान बनाने की मजदूरी करते थे, जिसकी दिहाड़ी रोज नहीं लग पाती थी. फिर काम सीखकर तरक्की कर गये और साधारण-से राजमिस्तरी हो गये थे. थक-हारकर लौटते थे और जल्दी सो जाते थे. कोई नियमित साप्ताहिक छुट्टी उन्हें नहीं मिलती थी. किसी दिन काम न लगना ही छुट्टी का दिन होता था.

मां की बात का आशय समझते हुए कक्का बोले, “अरे भैया को कहां फुरसत. फिर बड़े सीधे-साधे हैं, उन्हें खैराती अस्पताल जाने में ही डर लगता होगा. थोड़ी देर में तैयार हो जाओ, चलो तुम्हें आज ही अस्पताल ले चलते हैं.”

मां के चेहरे पर खुशी और सहमति की लहर-सी दिखायी दी. कक्का ने मुझसे कहा, “स्टेशन रोड पर कोई खाली तांगा आता-जाता दिखायी दे तो ले आना. तांगे वाले

से कहना, खैराती अस्पताल जाना है।”

जब मैं तांगा लेकर आया तो मां एक छोटा-सा झोला लिये साफ़ धोती में कक्का के साथ बस्ती के मुहाने पर खड़ी थीं। कक्का के साथ तांगे में बैठकर चली गयीं।

दोपहर बाद जब लौटीं तो उनके चेहरे की अक्सर छाया रहने वाली मलिनता गायब थी। ज़मीन पर बैठते हुए उन्होंने झोले से दवाइयां निकालीं। इस बीच कक्का ढीली चारपाई पर बैठ चुके थे। कक्का ने उनके हाथ से रंगीन शीशी लेते हुए कहा, “इसमें टॉनिक है, ताकत की दवाई। रोज़ सुबह-शाम एक चम्मच ज़रूर पीना भौजी। तुम्हें कोई बीमारी नहीं है, बस मियादी बुखार है। दवा खाओगी तो ठीक हो जाओगी। कमज़ोरी है, थोड़ा दूध भी पिया करो।”

उनकी बातों को मां बहुत ध्यान से सुन रही थीं।

उसी शाम कक्का बाज़ार गये और मटन लाये साथ में दारू भी। मां ने बड़े जतन से खाना बनाया। ढिबरी की धीमी रोशनी में कक्का और पिताजी टूटे कंदों वाले चाय के कपों में दारू पी रहे थे। कक्का नशे की झोंक में पिताजी को बार-बार तेज़ आवाज़ में समझा रहे थे कि जब पांच लड़के पहले से हैं तो छठवें बच्चे की क्या ज़रूरत थी! नशे में धुत पिताजी उनकी बात का कोई जवाब न देते हुए स्वीकारोक्ति में नज़रें नीची किये रहे। मां बार-बार कह रही थीं कि खाना तैयार है, परंतु उनकी बात पर कोई गौर नहीं कर रहा था।

उस वक़्त मैं दसवीं में पढ़ता था। कुछ ही महीनों में एकाएक मेरा क्रद बढ़ने से मैं पिताजी से ऊंचा दिखायी देने लगा था। कक्का ने मुझे पास बुलाया। बीड़ी का धुआं छोड़ते हुए मेरा हाथ पकड़ लिया और अपने पास बैठाते हुए पूछा, “किस क्लास में पढ़ते हो?”

मैं पहले भी कई बार उन्हें बात चुका था कि कक्षा दस में पढ़ता हूँ और इस बार बोर्ड की परीक्षा है, फिर भी वह याद नहीं रख पाते थे। खैर, उस दिन तो वह नशे में थे। समय-असमय उनकी आर्थिक सहायता से ही मेरी पढ़ाई चल रही थी। मैंने बताया, “कक्षा दस।”

“शाबास!” उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कंधे थपथपाकर कहा, “ऐसे ही मेहनत से पढ़ना कोई परेशानी तो नहीं?”

मेरी परेशानी थी, मुझे पढ़ने के लिए पांच किलोमीटर पैदल जाना-आना पड़ता था। थक जाता था। पढ़ने के लिए सुबह जल्दी जागना चाहता था लेकिन नींद नहीं खुलती थी।

हालांकि इस समस्या का प्राकृतिक उपाय मैंने निकाल लिया था। रात में ज़्यादा पानी पीकर सोता था कि अलसुबह पेशाब लगेगी तो मेरी नींद अपने-आप खुल जायेगी, परंतु यह उपाय हमेशा कारगर नहीं होता था। सोता ही रह जाता था। मैं चाहता था, कक्का मुझे एक सस्ती-सी अलार्म घड़ी दिलवा दें। मां खाने के लिए शायद फिर कहने आयी थीं, बोल पड़ीं, “स्कूल दूर पड़ता है, बेचारा पैदल जाते-आते थक जाता है। सुबह उठ नहीं पाता है।”

कक्का मुझसे पूरी तरह मुखातिब होते हुए बोले, “बेटा, मैं तुम्हें साइकिल दिलवा दूंगा मगर तुम्हें अच्छे नंबरों से पास होकर दिखाना होगा।”

कक्का की चुनौती भरी बात पर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। साइकिल की कल्पना तो मैंने कभी नहीं की थी और कक्का ने अगले दिन सचमुच, साइकिल दिलवा दी। नयी साइकिल छू-छूकर मैं बार-बार पुष्टि कर रहा था कि मैं सपना तो नहीं देख रहा हूँ।

कक्का हमारे परिवार में इस तरह खुशियां बांटते थे।

□

परेशानियों से जूझते हुए किसी तरह मैंने कला-वर्ग से सेकंड डिवीज़न में इंटरमीडिएट कर लिया था। मुझसे छोटे भाई ने पढ़ाई छोड़ दी थी, वह आवारा-सा घूमता रहता था और खाता ज़्यादा था, हम लोगों का खाना भी खा जाता था। अन्य छोटे भाई सरकारी स्कूल में घिसट-घिसटकर पढ़ रहे थे। अभावों में हमारा परिवार गुज़र-बसर कर रहा था। मैं हर पल गंभीरता से सोचने लगा कि मुझे परिवार का सहारा बनना चाहिए। कोई भी काम करने को तैयार था। शारीरिक रूप से कमज़ोर होने के कारण मज़दूरी कर पाना मेरे वश के बाहर था। छोटी-मोटी नौकरी की तलाश में था। मैं सोचता था, मिलेट्री में सिपाही ही बन जाऊँ। लंबा था ही, परंतु कमज़ोर शरीर के कारण सेना में भर्ती हो पाना संदिग्ध लगता था। रोज़गार कार्यालय में अपना नाम दर्ज करा आया था। वैसे मेरी इच्छा थी कि मुझे रेलवे में नौकरी मिले। मैं जिस परिवेश में पला-पढ़ा था, उसमें रेलवे की नौकरी ही श्रेष्ठ समझी जाती थी या हो सकता है कक्का के रेलवे में होने से मेरे मन में रेलवे के प्रति कोई अंतःअनुभूति रही हो! रेलवे की रिक्तियों की घोषणा की प्रतीक्षा में रहता था। हालांकि रेलवे में आवेदन और चयन की अनिश्चितकालीन प्रक्रिया में सालों-साल लग जाते थे। बेरोज़गारी के तेज़

एहसास से चढ़ती उम्र में भी मेरा चेहरा कांतिहीन था। हीनभावना मेरे भीतर घर करने लगी थी। ऐसा लगता था, जैसे वर्षों से निकम्मा हूं।

कक्का एक बार सरकारी काम से आये। वापसी में उन्हें मैं साइकिल पर बैठाकर स्टेशन तक छोड़ने गया। उस दिन मेरा मन हुआ कि कक्का को गाड़ी में बैठाकर आऊं। साइकिल स्टैंड पर साइकिल जमा करके उनके साथ प्लेटफॉर्म पर गया। उनकी गाड़ी प्लेटफॉर्म पर लग गयी थी, किंतु इंजन नहीं लगा था। कक्का खिड़की वाली सीट पर बैठ गये। मैं बाहर उनके पास खड़ा था। उन्होंने वेंडर से संतरे खरीदे और एक बड़ा-सा संतरा मुझे दिया। मैं अपने अंदर घुमड़ रही बहुत सी बातें उनसे कहना चाहता था। कक्का शायद समझ गये थे, बात उन्होंने ही छोड़ी, क्या बात है, आजकल तुम बहुत उदास रहने लगे हो।”

“कक्का मैं आजकल बहुत दुखी हूं। घर की हालत तो आप जानते ही हैं। पिताजी बीमार हो जाते हैं, लगातार काम नहीं कर पाते। मां इस उम्र में बीड़ियां बनाती हैं। घर में अभाव और तनाव बने रहते हैं। सोनू अलग बवाल मचाये रहता है। घर में छोटे भाइयों को पीट देता है, मां को आंख दिखाता है, बस्ती में झगड़ा-झंझट करता है।”

कक्का छोटे भाई सोनू की हरकतें सुनकर चुप रह गये। जैसे मनन करने लगे हों। थोड़ी देर बाद बोले, “क्या उपाय हो सकता है?”

“उपाय है कक्का... अगर मैं कहीं काम करने लगूं तो घर की कुछ समस्याएं हल हो सकती हैं।”

“मोनू, तुम वाकई अच्छे लड़के हो, जो इतनी फ़िक्र करते हो।”

इतने में गाड़ी का डिब्बा एक झटके से पीछे चला गया। आगे से धक्का आया था, इसका मतलब था कि इंजन जुड़ गया है।

मैं दो-तीन क़दम चलकर फिर खिड़की के पास पहुंच गया। कक्का ने मुझे समझाया, “मोनू, नौकरी के लिए इतना हड़बड़ाने की ज़रूरत नहीं। धीरज रखो। जगह निकलती है तो एप्लाई करते रहो। वैसे सुना है, सरकारी नौकरी में कहीं-कहीं तगड़ी घूस चलती है। घूस तो अपन दे नहीं पायेंगे।”

प्लेटफॉर्म पर हुई हलचल से लगा कि गाड़ी चलने वाली है। सिगनल डॉउन हो गया था। कक्का ने बात ज़ारी रखी, “हमारे स्टेशन के पास फ़ैक्टरी एरिया घोषित हो गया

है। तमाम फ़ैक्टरियां लग रही हैं। रेल से बड़ी-बड़ी मशीनरी आती हैं, हमारे स्टेशन पर ही उतरती हैं। मैं किसी फ़ैक्टरी वाले से बात करूंगा। उम्मीद है, कोई क़ायदे का काम तुम्हें मिल जायेगा। कुछ नहीं तो किसी ठेकेदार की मुनीमी मिल ही सकती है।”

इंजन की सीटी बजी। गार्ड ने भी सीटी बजा दी और ट्रेन हिली। कक्का आश्वासन के स्वर में बोले, जैसे ही कोई बात पक्की होती है, मैं ख़बर करूंगा... तुम ज़्यादा चिंता मत किया करो।”

गाड़ी आगे बढ़ने लगी। कक्का ने बटुआ निकाला और पांच रुपये का नोट निकालकर मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने नोट पकड़े-पकड़े हाथ हिलाकर उन्हें गर्मजोशी से विदाई दी। पुलकित-सा देर तक हाथ हिलाता रहा। जाती हुई गाड़ी से मुझे लग रहा था कि यह मुझे खुशियां लौटायेगी।

कक्का की बातचीत से मिली खुशी लेकर मैं घर लौटा।

□

बस्ती के बाहर पोस्टमैन ने मेरा और मेरे पिता का नाम पूछा। मैंने कहा, मैं ही हूं तो उसने एक पोस्टकार्ड पकड़ा दिया। पोस्टकार्ड के दोनों तरफ़ टेढ़े-मेढ़े बड़े-बड़े अक्षरों में बिखरा था — ‘मोनू मैं पहली तारीख वाले इतवार को तुम्हें लेने इटारसी पैसेंजर से आऊंगा और दोपहर को वापस लौटना होगा। काम बन गया है। तुम तैयार मिलना। तुम्हारे कक्का की सबको राम-राम पहुंचे।’

कक्का की लिखावट ख़राब ज़रूर थी लेकिन मुझे बहुत अच्छी लगी, जो दिल को छू रही थी। मैंने पोस्टकार्ड को कई बार पलट-पलटकर देखा और पढ़ा।

पत्र के बारे में मां को बता दिया और मां ने पिताजी को। स्टेशन पर हुई कक्का की बातों का आशय और अपनी सहमति घर में पहले ही बता चुका था कि अगर काम मिला तो कक्का मुझे लेने आयेंगे तो मैं उनके साथ चला जाऊंगा। दो दिन बाद ही पहली तारीख थी और इतवार भी।

इतवार की सुबह मैं स्टेशन पता करने गया कि इटारसी पैसेंजर की स्थिति क्या है। सूचनापट पर देखा, सारी गाड़ियां लेट थीं और इटारसी पैसेंजर के सामने लिखा था — कैसिल्ड! मुझे आश्चर्य हुआ। पता चला कि बीना के पहले बड़ा एक्सीडेंट हुआ है। किसी छोटे स्टेशन पर खड़ी इटारसी पैसेंजर के ऊपर पीछे से मालगाड़ी आकर चढ़ गयी

है. कई मुसाफिर मर गये हैं और सैकड़ों घायल हैं. गाड़ियों का आवागमन रुका हुआ है. एक घंटे बाद स्पेशल ट्रेन खाना होने वाली है, जिसमें दुर्घटनाग्रस्त मुसाफिरों के संबंधी भी जा सकते हैं.

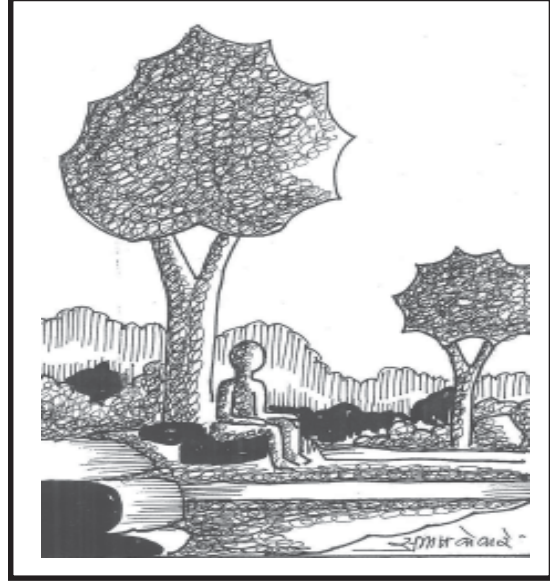
इन सूचनाओं से मेरे जैसा निराश प्रवृत्ति वाला अचेत हो सकता था. पता नहीं मेरे अंदर की कौन सी शक्ति मुझे थामे थी. मैं हड़बड़ाकर घर आया. मां को बताया. मां जोर-जोर से रोने लगीं. पिताजी घर में ही थे. पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गये. समझाने लगे, हो सकता है कक्का आगे की तरफ बैठे हों.

मां फुर्ती से बाहर निकलीं, लौटीं तो उनके हाथ में कुछ रुपये थे. पिताजी के हाथ में थमा दिये. अपना कोई छोटा-मोटा जेवर गिरवीं रखकर इंतजाम किया होगा. अंदर की कोठरी में जाकर अपनी पुरानी टीन की पेटी खड़बड़ाने लगीं और मुझे अंदर बुलाया. चौपरत किया हुआ एक कागज़ दिया, जो उन्होंने बहुत सहेज कर रखा होगा. मेरे कान की तरफ मुंह उठाकर धीमे से बोलीं, “जब तुम छोटे थे, कक्का ने तहसील में ये लिखा-पढ़ी करायी थी. कहते थे, कभी जब मैं न रहूं तो ये कागज़ काम आयेगा, संभाल के रखना.”

उसी कागज़ के सहारे हमें स्पेशल ट्रेन में बैठने दिया गया. ट्रेन में ही मुझे उस कागज़ को ठीक से देखने का मौक़ा मिल पाया. स्टैप पेपर पर मेरे गोदनामे की नकल थी, जिसमें कक्का ने मेरे पालने का दायित्व लिया था और मुझे अपना वारिस माना था. पिताजी ने बताया, “एक समय बीत जाने के बाद कक्का ने शादी न करने का फ़ैसला कर लिया था. उनके चेहरे और हाथों पर सफ़ेद दागों के कारण उनकी शादी नहीं हो पा रही थी. कहते थे, रेलवे में अपना वारिस लिखाना है, इसलिए ये लिखा-पढ़ी करायी गयी थी.”

ट्रेन बिना रुके तेज़ गति से चल रही थी. मेरी अश्रुपूरित आंखों में मेरे महान कक्का झूल रहे थे. एक स्थान पर गाड़ी धीमी होती हुई रुक गयी. हम लोगों को उतरने के लिए कहा गया. पास में सड़क पर बसें थीं, उनमें बैठाकर ले गये और दुर्घटना स्थल से कुछ दूरी पर सबको उतार दिया गया.

पुलिस की घेराबंदी थी. बड़ा वीभत्स दृश्य था. ट्रेन के डिब्बे दूर तक लुढ़के पड़े थे, कुछ डिब्बे आपस में एक-दूसरे पर चढ़े थे. डिब्बों को काट-काटकर क्षत-विक्षत लाशें



व अधमरे घायल लोग निकाले जा रहे थे. एक मैदान में कटे-फटे शव लाइन से रखे थे. वहां हमें ले जाकर पहचानने को कहा गया. ऐसी विकराल स्थिति में संभावना नहीं थी कि कक्का बच पाये हों. शंकित हो मैंने शवों को देखा. सदरी और खून-सने सफ़ेद दागों वाले हाथों को देखते ही मैंने कक्का के शव को पहचान लिया, उनका चेहरा विकृत था. मैं थर-थर कांपते हुए दहाड़ मारकर रो पड़ा. साथ चल रहे पिताजी ने मज़बूत हाथ मेरी पीठ पर रखकर मुझे संभाला.

इतनी भयानक मौतें एक साथ देखकर मैं पथराने लगा था.

□

हमारे हाथों में मुआवज़े के इतने रुपये भर दिये गये थे, जितने हमने कभी देखे न थे.

कक्का जीते-जी खुशियां बांटते रहे तो क्या मर कर ऐसे ही जा सकते थे! नहीं न! कक्का की भविष्य निधि से हमारे परिवार की दरिद्रता दूर हुई. सबसे बड़ा उपहार तो मुझे मिला. दया आधार पर मुझे रेलवे में नौकरी मिली और रहने के लिए बड़ा-सा क्वार्टर भी. कक्का मेरा सपना सच कर गये.

❀ 'मनोरम', ३५, कछियाना,

पुलिया नंबर-९, झांसी-२८४००३

मो.: ९४९५६९४५५२,

ईमेल- mohanbrij27@gmail.com



## कर्मयोगी

✍ माधव नागदा

गणमान्य, नौकरीपेशा, रिटायर्ड, पंच, सरपंच सब आ गये. केवल योग शिक्षक का आना शेष था.

पेमा काका कंधे पर हल लादे जा रहा था. उसके दूसरे हाथ में बैलों की रास थी. इतने सारे लोगों को स्कूल के यहां इकट्ठा देख उसके पैर ठिठके, न चाहते हुए भी पूछ, बैठा, “आज सुबै-सुबै कोई खेल है के?”

“अरे भोगा, आज योगा है योगा. इत्तोई नी जाणे. सारी दुनिया करे है. तू भी आ जा.” एक वार्ड पंच ने लगभग डांटते हुए कहा.

“आऊं होकम.”

“होकम-वोकम नहीं. सरपंच साब भी आये हैं. बुलावे हैं.”

“बस, यो गयो और यो आयो. आप चालू करो.” काका को कुछ, समझ में नहीं आया वह खेतों की तरफ जाने को आतुर बैलों को लेकर चल पड़ा.

योग आधे घंटे का था किंतु दो घंटे लग गये. प्रशिक्षक ने एक-एक आसन की व्याख्या की. भरस्त्रिका, कपालभाति,

अनुलोम-विलोम, भ्रामरी की बारीकियां समझायीं. फ़ायदे गिनाये. खुद करके दिखाया. तत्पश्चात योगार्थियों से करवाया. योगापरंत सरपंच साहब की तरफ से चाय-नाश्ता, विकास की चर्चा, अच्छे दिनों की बातें. फिर विसर्जन. पेमा काका का खेत रास्ते में था. लोगों ने देखा कि काका दीन-दुनिया से बेखबर, हल हांकने में मगन है. पीछे-पीछे उसकी पत्नी मक्का का एक-एक दाना यों छोड़ती जा रही है जैसे बेशक्रीमती मोती हो. लगभग आधे खेत की बुवाई हो चुकी है.

योगगुरू रुका. सभी रुक गये. योगी ने हाथ जोड़े. लोग समझे नहीं. इधर तो पश्चिम है. सूर्य उधर है, पूरब की तरफ. कहीं गुरू को दिशाभ्रम तो नहीं हो गया? शहर का आदमी है, पहली बार गांव आया लगता है. या फिर काका जैसे अनाड़ी को योग कराने की मंशा है?

योगगुरू लोगों का असमंजस ताड़ गया. हल चलाते काका की ओर देखते हुए दोनों जुड़े हाथ माथे को लगाये, फिर सिर जरा झुकाया और उच्च स्वर में बोला, “एक योगी का कर्मयोगी को प्रणाम.”

✍ माधव नागदा, लालमादड़ी, नाथद्वारा (राज)-३१३३०. मो. : ९८२९५८८४९४

## क्रिताबें

✍ डॉ. कुंवर प्रेमिल

वे पांच थे. पांचों मिलकर अपनी तरह तरह से क्रिताबों की व्याख्या कर रहे थे.

पहला बोला - क्रिताबें भविष्य की निर्माणी हैं. समय की चाबी हैं. किस्मत का दरवाजा यानी खुल जा सिम-सिम हैं.

दूसरा बोला - दरअसल हम क्रिताबें नहीं पढ़ते बल्कि क्रिताबें हमें पढ़ती हैं.

तीसरा - समय की पहरुयें हैं क्रिताबें, जनाब, क्रिताबों के अभाव में समय भी अपंग है... विकलांग है.

चौथा - क्रिताबें जन्म हैं... हूर हैं... बिना क्रिताबों के सारा जग कब्रिस्तान है. क्रिताबें, वर्तमान काल, भूतकाल,

भविष्यकाल की आइना हैं. क्रिताबें आदमी को जलवा दिखाती हैं.

पांचवां - चलो जी, अब बहुत हो गयी क्रिताबों की चमचागीरी. कल से पेट में दाना नहीं गया है. खाली पेट क्रिताबें नहीं पढ़ी जा सकतीं. पेट खाली हो तो दिमाग भी खाली. दूर-दूर तक नहीं दिखती है हरियाली. ये बोरे में भरी क्रिताबें लेकर मैं कबाड़ी को बेचने जा रहा हूँ ताकि भोजन का ताना-बना बुना जा सके.

चारों की चुप्पी ने वास्तविकता से समझौता कर लिया. उनकी चुप्पी उनकी स्वीकृति के रूप में मान ली गयी. क्रिताबें पेट की भूख की बलि चढ़ा दी गयीं.

✍ एम. आई. जी-८, विजय नगर, जबलपुर-४८२००२ (म. प्र.), मो.: ९३०१८२२७८२.

## देवा की वसीयत

✍ सोहन वैष्णव

**दे**वा उस आदिवासी का नाम था जो खेती करता था. उसके पिता ने बीस वर्ष की उम्र में ही उसकी शादी करवा दी. तीस तक पहुंचते-पहुंचते उसके तीन बच्चे हो गये. देवा के परिवार की हालत बहुत दयनीय थी. उसकी ज़मीन पहाड़ी परिक्षेत्र में स्थित होने के कारण इतनी उपजाऊ भी नहीं थी, फिर भी देवा और उसकी पत्नी पत्थरों में पसीना बहाया करते थे, ताकि बच्चों का पेट भरने जितना अन्न पैदा किया जा सके.

देवा के खेत पर महुए का एक पेड़ था, जिससे कभी-कभार वह देशी शराब बनाया करता था. शराब बेचने से उसे ठीक-ठाक आमदनी हो जाती थी. पर समय के साथ, समाज के खुरदरे हाथों ने उस पर निहायत भदे नकश बना दिये थे, जो मुझे उसकी मज़बूरी के कारण जान पड़ रहे थे. सफ़ेद लिबास वालों ने उसकी ज़मीन हथिया ली. उसकी पत्नी की हैजे से मौत हो गयी. देवा ने अख़्तियार कर ली, एक अनसोची राह..... फिर एक दिन... सूबेदार डोगरा की राइफल से निकली सनसनाती गोली से देवा उस ज़मीन पर निढ़ाल पड़ा था, जिसका कोई नाम नहीं था. हां, उसे वह अपनी वसीयत अवश्य कहता था.

□

मालाबार हिल! गर्मी में भी सुकून देने वाली जगह. पहाड़ी से नीचे चौराहे तक जाती नैपिएन्सी रोड. रोड के चारों ओर गुलमोहर के बड़े-बड़े पेड़. चौराहे पर बना कबूतर खाना, वहीं एक ओर नानीबाई स्कूल फिर सामने वर्ली दूरदर्शन केंद्र और वानखेड़े स्टेडियम की बड़ी-बड़ी चमचमाती लाइटें. स्कूल बस्ते के भारी भरकम बोझ को सहते हुए भी नौनिहाल अक्सर कबूतरों के लिए दाना लाना नहीं भूलते थे, मैं भी उनमें से एक था. चौराहे के सिग्नल पर लाल बत्ती के हरा होने के इंतज़ार में बस जब थोड़ी देर खड़ी रहती, तब मैं लगभग भागता हुआ, कबूतरों को दाना डालकर वापस बस में चढ़ जाता. कबूतर गुटर-गुटर करते दानों पर

टूट पड़ते थे. इस जगह से कभी विदा लेने का सोचा भी नहीं था, पर आज अवसर कुछ और ही था....

सारी पैकिंग करने के उपरांत भी सूटकेस के आस-पास सामान बिखरा पड़ा है. मन अभी भी उलझन में है, शायद पीछे कुछ छूट रहा है. ओह...! माता-पिता की तस्वीर रखना तो भूल ही गया. एक तस्वीर और भी है, जिसे सूटकेस के नीचे वाले हिस्से में संभाल कर रखना होगा. वक्रत-बे-वक्रत कुछ समय तो इनके साथ ज़ाया करना ही होगा. सरकारी बंगला, जिसमें सारी सुख-सुविधाएं, नौकर-चाकर तो होंगे ही, पर इनके बिना बंगला खाली एक इमारत बनकर रह जायेगा.

‘बेटा रोहन, दंतेवाड़ा पहुंचते ही खबर देना.’ पिताजी थोड़े चिंतित थे. पहली पोस्टिंग. नया शहर. नये लोग. घर में बड़े लाड-प्यार से पाला था मुझे. दीदी मुझे पढ़ाने के लिए रात-रात भर अपनी नींद हराम किया करती थी. उनका सपना था मैं आई. ए. एस. बनूं, और उनका सपना सच करना मेरा मक़सद भी था. और किया भी.

उस दिन मम्मी-पापा दोनों स्टेशन तक छोड़ने आये थे. मम्मी भावुक थीं. बार-बार आंसू टपका रही थीं. ‘अपना ध्यान रखना, नौकर से कहना खाना समय पर बनाये. और चाय तो तुम्हें छः बजे ही चाहिए, उसे पांच बजे ही उठा देना. दंगे-फसाद वाली जगहों पर जाओ तब सावधानी बरतना. सुना है वहां जीवदानी माताजी का बड़ा मंदिर है, समय निकालकर वहां माथा टेकने जाते रहना.’ मम्मी के पास ढेर सारी बातें थीं और उनका मेरे पास एक ही जवाब था, ‘हां...’

छतीसगढ़ का दंतेवाड़ा जिला, जहां नक्सलवाद के ज़िक्र मात्र से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं. देश एक ओर अपनी आंतरिक समस्याओं से त्रस्त है, तो दूसरी ओर आतंकवाद, उग्रवाद, नक्सलवाद जैसी अनेकों बीमारियों से. अब आप सोच रहे होंगे, मैं इन्हें बीमारी क्यों कह रहा



एम. ए. (हिंदी), एम. फिल., नेट, पीएच-डी. शोथरत.

**: प्रकाशन :**

अब तक पंद्रह कहानियां, बीस आलेख, पांच साक्षात्कार प्रकाशित; 'तीसरा देवदास' कहानी के लिए दैनिक भास्कर से पुरस्कृत; हाल ही में कथाकार गोविंद मिश्र तथा अमृतलाल वेगड़ से बातचीत प्रकाशनार्थ.

**: संप्रति :**

अतिथि व्याख्याता, हिंदी,  
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.).

हूं, तो वास्तव में ये सब बीमारियां ही तो हैं, जो देश को अंदर से खोखला किये जा रही हैं। ऐसा तो नहीं है कि सरकार इन पर लगाम नहीं लगाना चाहती, पर कहीं तो रेलम-पेल अवश्य है। जैसे एक छोटी-सी बात, किसानों को खेती के लिए आवश्यक बिजली आपूर्ति नहीं की जा रही है। एक तरफ इंडियन प्रीमियर लीग में करोड़ों की बिजली खर्च की जा रही है, वहीं दूसरी तरफ किसान आत्महत्या करने को मजबूर हैं। न बिजली, न मुआवजा. मानवता शर्मसार हो रही है। आई. ए. एस. की पढ़ाई के दौरान ही मैंने छतीसगढ़ के बारे में बहुत कुछ जान-समझ लिया था.

ट्रेन का सफ़र बड़ा ही मज़ेदार होता है। ए. सी. कोच, जिसमें मैं सीट नंबर २१ पर था। ट्रेन आज उतनी ही खाली थी जितना आबादी से रेगिस्तान. मैं अतिक्रमण करके बैठ गया, जिससे सीट नंबर २२ भी मेरे दायरे में आ गयी. रात १२ बजे तक सोलापुर स्टेशन आ खड़ा हुआ. इसी बीच यात्री भार भी बढ़ता जा रहा था. सरकारी नियमों को ध्यान में रखते हुए, मैंने अपना अतिक्रमण स्वयं ही ध्वस्त कर लिया.

वारंगल स्टेशन से मेरे सामने वाली सीट पर एक ऐसा शख्स आकर बैठ गया, जिसका चेहरा डरावना था.

चेहरे से तो लग नहीं रहा था कि वह व्यक्ति ए. सी. कोच में बैठने लायक था. पर आज के समय में कुछ कहा नहीं जा सकता, इसलिए मैंने भी अपनी निगाहें उस पर से हटा कर खिड़की से बाहर की ओर कर लीं. अगले स्टेशन पर ट्रेन रुकती उससे पहले ही डिब्बे में टी. टी. महोदय आ धमके. टी. टी. ने आते ही उस व्यक्ति से टिकिट मांग लिया, जो मेरे सामने बैठा था. उसने कहा टिकिट नहीं है. ट्रेन आंध्र प्रदेश की सीमा समाप्त कर रही थी. टी. टी. ने चालान बनाने की कोशिश की तो उसने 'मेरा चालान बनायेगा' कहते हुए, टी. टी. की खोपड़ी पर रिवाल्वर तान दी. मैं तो एकदम सहम गया, बाक़ी बचे-खुचे यात्री भी.

'टी. टी. महोदय, रहने दीजिए. इनके टिकिट के पैसे मैं अदा कर देता हूं, और श्रीमान आप भी अपना रिवाल्वर हटा लीजिए.' मैंने हिम्मत से काम लेते हुए कहा. रिवाल्वर हटी तो टी. टी. ने राहत की सांस ली और मेरी भी जान में जान आयी. अन्यथा खोपड़ी का एक-एक पुर्जा ढूँढ़ना पड़ता.

दूसरे दिन का सूर्य उगने के साथ ही ट्रेन दंतेवाड़ा पहुंच गयी थी. नियमानुसार सरकारी गाड़ी स्टेशन के बाहर खड़ी, मेरा बेसब्री से इंतज़ार कर रही थी. मेरे उतरने से पूर्व ही वह व्यक्ति जो ट्रेन में आतंक मचा रहा था, मेरी नज़रों से ओझल था.

पहले ही दिन ऑफिस में शहर के कई नामचीन लोग, स्वागत के बहाने दुम-दबाये मिलने आये थे. किसी के हाथ में मिठाई, किसी के हाथ में महंगी पेंटिंग्स तो किसी के हाथ में रंग-बिरंगे फूलों से सजा हुआ गुलदस्ता. चमचों की हमेशा दिल्ली यात्रा हुई है, अतः मैं इन सब हथियारों के उपयोग से वाक़िफ़ था, भली-भांति.

पहले दिन मैंने स्टाफ़ के कर्मचारियों की मीटिंग ली. ऑफिस के लोग अपने तजुबों के आधार पर मुझे बता रहे थे कि पहले किसी व्यक्ति या अधिकारी के अपहरण की वारदातें होती रहती थीं, पर अब दोनों ओर से बक्रायदा लड़ाई की ख़बरें बराबर जारी थीं. बंदूकें तो आम तौर पर लेकिन, बम और बारूदी माइन्स बिछाकर हमला करने की योजना लगातार जारी थी. जिसमें कई लोग हताहत होते तो कई लोग मारे जाते. सेना सरकार की ओर से लड़ रही थी, तो दूसरा पक्ष अपने अधिकारों की मांग को लेकर मैदान में था. अधिकार..... अपनी ज़मीन का हक़ पाने का अधिकार.

मीटिंग में एक कर्मचारी ने जब नक्सलवाद के मुखियाओं

की फ़ाइल मेरे सामने रखी तो मैंने देखा, वह चेहरा सबसे ऊपर था, जिसे मैंने ट्रेन में देखा था. फ़ाइल के चित्र के नीचे साफ़-साफ़ बड़े अक्षरों में नाम लिखा हुआ था — 'देवा'.

मैंने कम समय में ही मीडिया, जनसंपर्क व स्टाफ़ के सदस्यों की सहायता से, देवा के जीवन अतीत में झांक लिया. तस्वीर एकदम साफ़ थी, उजले पानी की तरह.

उसी दिन रात के ठीक ग्यारह बजे मुझे फ़ोन आया, पास के गांव में नक्सलवादियों ने चार लोगों को गोलियों से भून दिया. मुझे लगा शायद यह मेरा स्वागत है, उनकी ओर से. उसी पल मैंने मन ही मन देवा से मिलने व उससे वार्ता करने का संकल्प लिया, वो भी अकेले.

सवरे मैंने नक्सलवादियों के दुर्गम स्थानों पर संदेश भिजवाया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया.

सर्दी के दिन. कड़ाके की ठंड. जब मैं नक्सलवादियों द्वारा निर्धारित स्थान पर पहुंचा तो देखा, घना अंधकार और उसमें जुगनू की तरह रोशनी प्रदान करने वाला अलाव, जो उन्होंने अपने समूह के मध्य जला रखा था. मेरे साथ केवल दो हथियार बंद सिपाही थे. यद्यपि मैं उन्हें अपने साथ लाना नहीं चाहता था, मगर एस. पी. साहब की ज़िद थी. मुझे देख कर नक्सलवादी जो संख्या में तक्ररीबन तीस थे, खड़े हो गये. उन्होंने मुझे बैठने के लिए लकड़ी का एक गड्ढा दिया. मैं बैठ गया. मेरी हैरत करने की कोई इंतहा न रही, सब के हाथों में स्टेनगन थी.

मेरी नज़र उस शख्स तक तुरंत पहुंच गयी जिसने मेरे जेहन में खलबली मचा रखी थी. मेरी आंखें उससे मिलीं और मैंने देखा की उसकी आंखों में नफ़रत और सख्ती के अलावा कहीं करुणा से लिपटा हुआ आदरभाव भी था. काफ़ी सूक्ष्म, लेकिन मैं उसे पहचान गया.

मेरे बैठने का इशारा करते ही देवा के सभी साथी स्टेनगन थामे ज़मीन पर बैठ गये, देवा खड़ा रहा.

'देवा! मैंने बिना किसी औपचारिकता के अपनी बात कहनी चाही.

'मेरी नज़रों में तुम वो इंसान नहीं हो जैसा सरकार तुम्हें समझती है. मैंने तुम्हारे बारे में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की है, बिना किसी प्रशासनिक भाव से.'

देवा ने लगभग गुरांते हुए सख्त स्वर में कहा, 'काम की बात करो, कलेक्टर साब!'

उसकी सख्त आवाज़ से मैं अंदर तक कांप गया. कैसे अपनी बात कहूं? लेकिन मुझे अपनी बात कहनी थी.

कुछ देर चुप रहने के बाद, अपने मानस में उठने वाले विचारों को मैंने जुबान पर लाना शुरू किया.

'देवा! मैं तुम्हारे साथ हुए अत्याचार और नाइंसाफ़ी को बहुत अच्छे ढंग से समझता हूं.' मेरी बात उसने बीच में ही काट दी .

'कलेक्टर साब! मैं फिर कह रहा हूं, काम की बात करो, लोरी मत सुनाओ.'

मैं हतप्रभ रह गया. उस जंगली मानस को कैसे समझाता.

मैंने फिर से कहा, 'देखो देवा, तुमने जो रास्ता अपनाया है वो सही नहीं है. ऐसा लगता है जैसे तुम स्वयं अपने परिवार को उजाड़ने पर तुले हो. तुम अपनी ज़िद छोड़ दो और पर्दे के पीछे बैठे हुए उन सफ़ेद नक्राब पोशों को पहचानो जो तुम्हें व तुम्हारे परिवार को अपनी ही सेना से जंग करने को मज़बूर कर रहे हैं. ये नक्राब पोश लोग वे हैं, जो न तुम्हें तुम्हारे हक़ दिला पायेंगे, न हमें हमारे कर्तव्य का निर्वहन करने देंगे. ये वे लोग हैं जो तुम्हारे कंधों पर, अपने स्वार्थों की बंदूकें रखकर देश को गृह युद्ध की आग में झोंक रहे हैं. कभी तुमने सोचा है कि तुम्हें मिलने वाला पैसा और हथियार कौन और क्यों उपलब्ध करवाता है... तुम मेरा भरोसा करो देवा!'

'ख़बरदार! कलेक्टर साब. भरोसा! ऐसी फिज़ूल बातों से समय ज़ाथा न करो. साब! आप अच्छे हो या बुरे, मैं नहीं जानता. मेरी सलाह है कि आप कल ही यहां से चले जाइए, देवा रहे ना रहे ये जंग ज़ारी रहेगी. क्योंकि यह जगह भी मेरी है और यहां का राज भी.'

देवा के इतना कहते ही उसके साथी उठ खड़े हुए और पलक झपकते ही उसके साथ जंगल के अंधियारे में कहीं गुम हो गये.

मैं अनबना-सा, किसी पराजित सिपाही की तरह अवाक खड़ा देखता रह गया. मंथर गति से चलता हुआ मैं अपने आवास पर लौट आया.

लगभग एक महीना बीत गया. फिर एक दिन शाम को पार्टी विशेष की एक रैली का आयोजन होना था. वहां देवा के हमला करने की पुख्ता सूचना थी. मैंने सेना के अधिकारियों से बात कर घात लगा दी, जंगल की सरहद से थोड़ी दूर.

रैली को थोड़ी देर के लिए रोक दिया गया. बख़्तर बंद सेना की एक टुकड़ी को रैली के रूप में उसी रास्ते से



गीत

## अब विलीन तुम में होकर

✍ डॉ. मधु प्रसाद

प्रेम वीथि में दूर-दूर से  
आये प्रेमिल हरकारे ।  
किसके हाथों सौंपू पाती  
पढ़ने को उत्सुक द्वारे ।  
अश्रु कुटी से झांक देखती  
विरही आंखें जी भर कर ।

देह द्वीप पर दीपक बाले  
भाव प्रवण संध्या उतरी ।  
खड़ी प्रतीक्षा शरमाई-सी  
और लालिमा है छितरी ।  
लगन लगा कर लल्ल देखती  
लगन पत्रिका तारों पर ।

कब तक करूं प्रतीक्षा प्रिय की,  
छेड़ दिया आशा ने घर ।  
अठबांवी है मग की गीता,  
कांप रहे अधरों पे स्वर ।

सुधियों के तव बौर देख कर  
कोयल गीत सुनाती थी ।  
प्रणय प्रसंगों की सब छवियां  
लौट-लौट फिर आती थीं ।  
बहती रहती जैसे ठदिया  
दरपण में ठिज को लखकर ।

वेद ऋचाओं के गायन से  
गुंजित होता घर आंगन ।  
संयम की डोली में ठिठकी  
सपनों की मादक चितवन ।  
ताप मिटेगी जठम-जठम की  
अब विलीन तुम में होकर ।

✍ २९, गोकुल धाम सो., कलोल-महसाणा हाइवे,  
चांद खेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४. मो.: ९५५८४२४७८८.

आगे बढ़ने का आदेश देकर मैं सेना के बाक्री जवानों के साथ सरहद के दूसरे रास्ते पर हमलावर के रूप में तैयार था.

घुप्प अंधेरा घिर आया था. हवा और पेड़ों के बीच सरगोशियां शुरू हो गयी थीं. कर्नल सतीश ने जवानों को सचेत किया कि सरहद के पास कीचड़ और खाई-खंदक है, पांव ज़मीन में धंस सकते हैं, कोई भी कोताही न बरते.

अचानक दो-चार हथगोले और बारूदी माइन्स फटने से रैली के रूप में चल रहे जवानों ने मोर्चा संभाला. दूसरी तरफ़ घात लगाये बैठे जवानों ने चील कौवों की भांति धावा बोला. आधे घंटे तक धांय-धांय, हाय! हाय!, इधर-उधर का शोर चलता रहा. एकाएक सूबेदार डोगरा की गोली अंधेरे को चीरती हुई अपने निशाने पर लगी. एक गगनभेदी चीख हवा के संग बह गयी. चार-पांच जवान अपनी जवानी

को कुर्बान कर चुके थे और लगभग सारे हमलावर अपनी जान गवां बैठे.

मेरी नज़रें देवा को ढूँढ़ रही थीं. आखिर वह दिखा, धूल से सना चेहरा, खून से लथपथ शरीर. पास में बिखरी हुई लाल पगड़ी और एक हाथ में राइफल जो अब भी कह रही थी, यह सरहद और वसीयत देवा की है.

ऑपरेशन पूरा हुआ, पर खौफ़नाक मंजर पूरी रात आंखों में तैरता रहा. सीने में एक अजीबो-गरीब तूफ़ान बरपा. अगले सवरे टेबल पर पड़ी फ़ाइल को बंद कर दिया गया.

✍ १८१, उतरी आयड़, रूप वाटिका,  
सुथारवाड़ा, उदयपुर ३१३००१

मो.: ७८७७०६८६४८/९७९९८२८२९१  
e-mail: sohanvaishnav@gmail.com

# भगवद्

## डॉ. अशोक गुजराती

**उ**स छोटे-से स्टेशन पर रेल रुकी. समीर उतरा. प्लेटफार्म खचाखच भरा हुआ था. उसे पता था कि यह गुरुवार के कारण है. इस गांव-नुमा क़स्बे में मंदिर जो है, वह इस वार को भीड़-भरा होता है. फिर आज तो गजाधर महाराज, जिनके नाम पर मंदिर है, उनकी जन्म-तिथि भी थी. वह धीरे-धीरे चलता हुआ स्टेशन परिसर के बाहर आया. वहां रिक्शेवालों के बीच होड़ मची हुई थी. थोड़ी दूरी पर एक बस खड़ी थी, जो यात्रियों को मंदिर तक निशुल्क ले जाती थी. उसके पायदान पर भी कई-एक लटके हुए थे. वह इन सबसे निरपेक्ष-सा लोगों के मध्य से राह बनाता पैदल आगे बढ़ गया.

रास्ते पर मुसाफ़िरों के रेले के रेले बहे जा रहे थे. बायीं ओर का जीन-प्रेस, दाहिनी तरफ़ की बंद फ़ैक्टरी... और वह बस स्टैंड तक आ पहुंचा. इसके बाद सड़क की दोनों बाजूओं पर दुकानें थीं — कपड़ों की, जूतों की, किराने की, चाय-नाश्ते की, मेडिकल... और भी सब तरह की, जो एक क़स्बे की रोज़मर्रा की ज़रूरतों के हिसाब से हर जगह होती ही होती हैं.

अब उसके बायें एक स्कूल था. इससे उसकी तमाम स्मृतियों का एक अटूट रिश्ता था. जब वह दसवीं कक्षा में था, यहीं पर बैडमिंटन के तालुका टूर्नामेंट आयोजित होते थे. उसे याद आया — क्या तो वे दिन थे...

उसने शाब्दिकता के साथ यहीं पर बैडमिंटन डबल्स में विजय पायी थी. शाब्दिकता... वह मंदिर जा रहे रास्ते पर एक किनारे चल रहा था, रुक गया उस स्कूल के गेट के पास. सोचता रहा अपने अतीत के बारे में. फिर उन बीते हुए चित्रों के साथ वह हौले-हौले आगे बढ़ता गया...

जब दोनों उस तहसील स्तरीय टूर्नामेंट में जीत गये तो स्वाभाविक था लौटते में वे आपस में जुड़ जाते. यही हुआ. शाब्दिकता ट्रेन में उसके पास की सीट पर ही आ बैठी थी. दोनों विजयोल्लास से भरे-भरे खेल के दौरान अपने

परस्पर सामंजस्य से अभिभूत हो, हर शॉट के विषय में विस्तार से चर्चा करते रहे थे.

वापिस अपने शहर आये तो दसवीं के इम्तहान सामने थे. उसकी तैयारी के दरमियान भी मिलते-जुलते रहे. ज़िला स्तरीय टूर्नामेंट में शिरकत न करने का फ़ैसला लिया. नोट्स और क़िताबों का आदान-प्रदान होता रहा. इस मेल-मिलाप के चलते दोनों में आंतरिकता ने अपने पैर जमाये. इस नज़दीकी ने उन्हें स्वयं की और दूसरे की भावनाओं को समझने में मदद की. एक अनाम संबंध उनके बीच पनपता रहा, जिसको फ़िलवक़्त में कोई नाम देना ठीक नहीं था. हां, अंकुर फूट चुका था — पल्लव लजाते हुए धीरे-से उन्मूलित हो रहे थे...

“तुम कल क्यों नहीं आयीं?”

“क्या करूं, मां की तबीयत अचानक बिगड़ गयी थी.”

“अब ठीक है..?”

“हां, थोड़ा-सा बुखार था, दवाई देने से उतर गया.”

“मैं तुम्हारा इंतज़ार करता रहा..”

“मैं भी आने के बहाने ढूंढती रही, पर हो न सका.”

“चलो, आज आ गयी हो तो अच्छा लग रहा है. तुम्हारे लिए फ़िजिक्स के पिछले तीन साल के पेपर्स मैं ले आया हूं. और उनमें से अपेक्षित सवाल भी मैंने चुन लिये हैं.”

“समीर, तुम मेरा कितना ख़याल रखते हो...”

यह संयोग ही था कि स्कूल के पश्चात एक ही कॉलेज की एक ही कक्षा में दोनों फिर आ मिले. पुरानी निस्वत थी ही — दोस्ती निखरने लगी. यही वो समय था जब समीर की ज़िंदगी में भारी उथल-पुथल ने बवंडर ला दिया था...

□

वह मंदिर के विशाल गेट से प्रवेश कर रहा था. उसने अपने सर को दायें-बायें घुमाकर खुद को वर्तमान के



२८ जुलाई, महाराष्ट्र  
एम. एस-सी., एम. ए., पीएच-डी. (हिंदी)

**: प्रकाशन :**

‘खुशबू का अहसास’ (बाबा आमटे की औपन्यासिक जीवनी/एनबीटी), ‘सार्थ’ (आलेख संग्रह), ‘तुम क्या जानो’ (लघुकथा संग्रह), ‘व्यंग्य के रंग’ (व्यंग्य संग्रह), ‘पंछी-सी उड़ान’ (बालकथा संग्रह), ‘अंगुलीहीन हथेली’ (कहानी संग्रह), ‘सौर जगत का एक बंजारा’ (लेख संग्रह), ‘वहबच्चे’ (व्यंग्य संग्रह) ‘ओ. हेनरी की कहानियाँ’ (अनुवाद), ‘जंगल में चुनाव’ (किशोर उपन्यास), ‘विज्ञान : हंसते-हंसाते खंड-१ व २ (बालोपयोगी), ‘सृष्टि की रचना’, ‘कालू का कमाल’ (बालकथा संग्रह), ‘लालची भालू’ (बालकथा संग्रह), ‘खुशी के दीये’ (बालकथा संग्रह) और प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में ५५० से ज्यादा रचनाएं प्रकाशित.

**: शीघ्र प्रकाश्य :**

‘कहानी में प्रेम’ (आलोचना) तथा ‘मेरी बात और है!’ (कहानी संग्रह), ‘बीर-बहूटी’ (नाटक) और ‘चिंतना’ (आलोचना)

**: पुरस्कार एवं सम्मान :**

‘बाबा आमटे : खुशबू का अहसास’ महाराष्ट्र हिंदी साहित्य अकादमी से पुरस्कृत; ‘अंगुलीहीन हथेली’ (क. सं.)- केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा पुरस्कृत; ‘पंछी-सी उड़ान’ (बालकथा संग्रह)- महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी से पुरस्कृत; ‘खुशी के दीये’ (बालकथा संग्रह) को दिव्य रजत अलंकरण.

**: संप्रति :**

स्वतंत्र लेखन.

सख्त धरातल पर लाने का प्रयास किया. गेट से मंदिर तक पक्की सड़क थी और दोनों ओर दुकानें, फूल, प्रसाद और तरह-तरह की मूर्तियों, मालाओं तथा आकर्षक गिफ्ट्स की. वह इन सबसे बे-खबर सीधा वहां तक चलता गया, जहां से मंदिर के गर्भ-गृह में जाने हेतु रास्ता नियोजित था. यह

सड़क के समतल प्रारंभ होता था लेकिन बाद में गुफा की शकल में जमीन के नीचे से होते हुए गर्भ-गृह के द्वार पर ऊपर खुलता था. इस सुरंग-नुमा संकरे रास्ते से भक्त पंक्तिबद्ध हो मंदिर के सुरक्षाकर्मियों की उपस्थिति में मंदिर के ऊपरी परिसर की भीड़ से बचते हुए उस द्वार तक जा लगते थे, जहां डंडे से उनको रोक-रोककर पांच-छह के समूह में नीचे जाने दिया जाता था.

मंदिर के ऊपरी भाग में स्थित देवी-देवताओं की पूजा के वास्ते अलग व्यवस्था थी. मंदिर जिन गजाधर महाराज के नाम से प्रसिद्ध था, उनकी समाधि नीचे थी. अक्सर भीड़-भाड़ में समाधि तक जाते लोग कोहराम मचा देते थे. ऊपर राम-सीता-हनुमान के दर्शन करने और नीचे जाने को उतावले भक्तों को सुरक्षाकर्मी कितना ही अनुशासित करते कुछ न कुछ तालमेल गड़बड़ा जाता था. इसलिए संस्थान के व्यवस्थापकों ने समाधि तक जाने के लिए यह नया रास्ता बनाया था ताकि नियंत्रण हो सके. वे इस में कामयाब भी हुए थे. सुरंग से होकर लोग बिना किसी अव्यवस्था के गर्भ-गृह तक सुरक्षित जा पाते थे.

समीर लंबी क्रतार के आखिरी छोर पर खड़ा हो गया. उसके सामने एक युवा स्त्री अपने बच्चे को बांहों में संभाले हुए थी. शायद उसका पति उसके आगे था. बच्चा सोया हुआ था. सुरक्षाकर्मी ने ज्यों ही सुरंग के मुहाने से डंडा हटाया, समीर उस दंपती के पीछे अंदर दाखिल हो गया. वह उस महिला से समुचित अंतर बनाये था. महिला बच्चे को गोद में बराबर उठाये रखने के यत्न में कभी-कभार उससे टकरा जा रही थी. एक बार तो यों हुआ कि वह लगभग समीर की देह से मानो चिपक-सी गयी थी. समीर संकोचवश कुछ पीछे हट गया था. तभी बच्चा रोने लग गया था...

उस बेचारी महिला की मुसीबत बढ़ गयी थी. छोटे-से बच्चे को वह दुलार के शब्दों से, बांहों के झूले में झुलाते हुए बहलाने की कोशिश में लगी हुई थी. बच्चा था कि किसी क्रदर मान नहीं रहा था. मजबूरन उस स्त्री ने चलते-चलते अपने ब्लाउज को ब्रेसियर समेत ऊपर किया और बच्चे के मुंह में अपना स्तनाग्र दे दिया. सुरंग में मात्र एक पंखा लगा था. शायद हवा की कमी के कारण बच्चे की नींद खुल गयी थी परंतु ज्यों ही उसे अपनी मां के वक्ष से दूध का स्वाद आया, वह ऑक्सीजन की न्यूनता को जैसे भूल गया.

समीर देख रहा था, चूंकि उसकी ऊंचाई उस औरत से औसतन बहुत ज्यादा थी — स्पष्ट रूप से कि बच्चा किस प्रकार अपने नन्हे-नन्हे हाथों से अपनी मां की छातियों को छेड़ता, सहलाता-सा मगन था उस अमृत-पान में।

वे सुरंग का काफ़ी फ़ासला तय कर गये थे। समीर के पीछे भी कई लोग थे। वे बीच-बीच में गजाधर महाराज की जय-जयकार करते हुए आनंदित नज़र आ रहे थे। आगे थोड़े अंतर पर एक सुरक्षाकर्मी सबसे संयत रहने की अपील कर रहा था। सब कुछ सामान्य था। लोग अपनी आस्था के तहत एक निराली खुमारी में डूबे-डूबे महाराज के दर्शन को लालायित लग रहे थे। वह महिला बच्चे के तृप्त हो जाने की अनुभूति से लबालब प्रसन्न दिखाई दे रही थी।

इसी वक़्त समीर नीचे झुका-झुका जोर से चिल्लाया — ‘अरे! सांप... सांप...!’ हड़बड़ी में वह महिला को धक्का देते हुए पूरी रफ़्तार से चार-पांच लोगों से टकराते हुए आगे तक गया। उसके चेहरे पर घबराहट के चिह्न थे। एक पल-और वह पलटा — ‘नाग है, नाग...’ ऊंची आवाज़ में उसने शोर मचाया और जहां वह पहले था, वहां से पीछे तीनेक लोगों को ज़बरन हटाते हुए भागा। भगदड़ मच गयी। महिला के आगोश से बच्चा समीर के प्रबल आघात से नीचे जा गिरा था। वह पागलों की नाई उसे फ़र्श पर यहां-वहां तलाशने लगी। तभी पीछे से आ रहा डरा हुआ लोगों का जमघट अंधों जैसा उसे धक्के मारता आगे निकला और वह उनके पांवों के बीच पिस गयी। उसका पति उसे संभालने के प्रयत्न में विरुद्ध दिशा से आ रहे आतंकित जन-संकुल के झटके से उसको लांघते हुए सर के बल जा गिरा और ज़मीन चूमने लगा। समूची सुरंग में अफ़रातफ़री हावी हो गयी। कोई कुचला गया, कोई दीवार से टकराया, कोई चारों खाने चित हो, बचाओ... बचाओ... की गुहार लगाने लगा। यहां तक कि आगे कुछ दूरी पर ड्यूटी पर तैनात सुरक्षाकर्मी भी उठेंगा-सा दोनों हाथों से भीड़ के दबाव को थामने में असफल हो रहा था। तीन फ़ुट चौड़ी, सात फ़ुट ऊंची गुफा में हर कोई अपनी जान बचाने की कोशिश में घुटनों के बल गिर रहा था या धराशायी हो जा रहा था।

समीर आसपास के लोगों को हड़काते हुए सुरंग की दीवार से चिपक कर खड़ा हो गया था। वह देख सकता था कि वह छोटा बच्चा लोगों के पैरों तले बुरी तरह कुचला जा चुका था। अपनी बांह से उसे घेरे उसकी मां या तो बेहोश

हो चुकी थी अथवा अंतिम सांस ले रही थी। जहां तक उसकी दृष्टि जा सकती थी, यही हालत थी। कोई मर रहा था, किसी का हाथ तो किसी का पैर टूट चुका था। सभी चीख-चिल्ला रहे थे। सुरक्षाकर्मी पहले तो प्रयत्न करते रहे लोगों को शांत करने का फिर लोग जब उनको भी धकियाते हुए इधर-उधर होने लगे तो उनमें भी कुछ घायल हो गये या जान बचाने की खातिर बाहर दौड़ पड़े।

चंद ही मिनटों का हादसा था यह। चक्रवात-सा आया और रुक भी गया। पता नहीं कितने कुचले गये, कितने ज़ख्मी हुए और कितने अपने-आपको येन-केन महफ़ूज़ रख पाये। मंदिर का सारा स्टाफ़, व्यवस्थापक इस ख़बर को पाते ही अविलंब वहां आ गये थे लेकिन जो हो चुका था, उस पर किसका बस था... राहत कार्य प्रारंभ हो गया था। मंदिर की दो एम्ब्युलेंसों में गिरे-पड़े यात्रियों को उठा-उठाकर डाला जा रहा था। मंदिर में ही स्थित अस्पताल तक उन्हें ले जाने के उपरांत एम्ब्युलेंस पुनः अन्य चीखते-चिल्लाते स्त्री-पुरुषों को ले जाने को आ चुकी थी। कुछेक युवक भी, जो सही-सलामत थे, इस कार्य में सहायता कर रहे थे। पुलिस भी आ गयी थी पर कोई अचूक बता नहीं पा रहा था कि दुर्घटना कैसे हुई।

इन सब अनवरत चलते दृश्य-क्रमों के मध्य समीर, जो दीवार से चिपका खड़ा था, आहिस्ता-आहिस्ता सुरंग से बाहर निकल आया। फूल-मालाओं की दुकान पर जाकर उसने एक गुलाब का फूल खरीदा। शायद शाब्दिता के लिए...

□

शाब्दिता, वही जिसने समीर को अवसाद में धिरे होने पर पूरा साथ दिया था। वह आती रही थी उसके घर। उसकी सह-अनुभूति से समीर का परिवार आप्लावित होता रहा था। समीर की बहन तबस्सुम तो उसकी सहेली बन गयी थी। लेकिन परिस्थितियों पर किसका वश चलता है... बावजूद शाब्दिता के प्रेमपूर्ण सद्भाव के वे टूटते ही चले गये थे। आप कितनी भी बड़ी-बड़ी बातें कर लें, जब चारों दिशाओं से आप पर संकट के बादल छाये होते हैं तो अवसन्न मन को सहेजना वैसे ही कठिन हो जाता है जैसे नदी में अगला क्रदम रखते ही एकाएक आयी गहराई के मारे आप डूबने लगते हैं, आपके हाथ-पैर काम नहीं करते, दिमाग़ सुन्न हो जाता है, उस ऊभ-चूभ से आप पार नहीं पा सकते। सहारे के लिए बड़े हाथों को भी पकड़ नहीं पाते, आपके नाक-मुंह



में पानी भरता जाता है और...

यही दर्दनाक मनस्थिति हो गयी थी समीर की. क्या तो उसकी उम्र थी — सिर्फ़ सत्रह साल और पिता का साया सर से उठ चुका था. जी नहीं, उनका अवसान नहीं हुआ था, उन्हें तो हमारी सरकार ने आतंकवादी का ठप्पा लगाकर जेल में डाल दिया था. समीर और उसके परिवार के लिए तो ज्यों उनका इंतकाल ही हो चुका था. पुलिस ने उन्हें आतंकी क़ानून के तहत गिरफ़्तार कर पता नहीं किस काल-कोठरी में ग़ायब कर दिया था कि किसी को उनसे मिलने की इज़ाज़त भी नहीं थी.

ख़ैर! साया तो उठ ही चुका था. पिता के न रहने पर तीन छोटे भाई-बहनों और अम्मी की ज़िम्मेदारी समीर के अपरिपक्व और नाज़ुक कंधों पर आन पड़ी थी. उसने दोस्तों के साथ मिलकर, कुछ बुजुर्गों की रहनुमाई में पुलिस को सच्चाई से वाक़िफ़ कराने की पुरज़ोर कोशिशें कीं कि, उसके वालिद एक मामूली नौकरी-पेशा और शरीफ़ इंसान हैं, उनका किसी दहशतगर्दी से कोई नाता नहीं है... लेकिन उसकी कोई दलील नहीं मानी गयी. पुलिस का कहना था कि उसके वालिद अजमल शरीफ़ केवल नाम से शरीफ़ हैं, उनकी काली करतूतों की लंबी फ़ेहरिस्त उनके पास मौजूद है...

समीर के अब्बू तहसील कार्यालय में वरिष्ठ लिपिक थे. बेहद ईमानदार. वहां तो रिश्तत लेने वालों की चांदी रहती है पर इस पचड़े से उन्होंने ख़ुद को हमेशा दूर रखा. शायद उनकी यही ईमानदारी ही उनके आड़े आ गयी. रिश्तत लेते नहीं थे, ग़ैर-क़ानूनी काम करते नहीं थे. किसी बड़े आदमी की किसी अर्ज़ी को उन्होंने अग्रेषित करने से मना कर दिया था कि वह झूठी है सरासर और अवैध. जिस भूभाग को वो ख़रीदना चाहता था, वह सरकारी था, जिसे किसी और के नाम से रज़िस्टर बताया गया था. उनके रोकने से वह लेन-देन तो रुका नहीं, उनको ज़रूर इसकी क्रीमत चुकानी पड़ी. उस बड़े आदमी के सियासत में गहरे ताल्लुकात थे. उसने अजमल शरीफ़ के ख़िलाफ़ पुलिस को ऐसे सुबूत पेश कर दिये, जो उन्हें देशद्रोही साबित करने के लिए पर्याप्त थे.

कहीं कोई सुनवाई नहीं थी. बताया जा रहा था कि पाकिस्तान की आइएसआइ से जुड़े होने की आशंका के कारण उसके वालिद को यहां से दिल्ली लेकर चले गये थे. आतंकवाद-रोधी धाराओं की कड़ी कार्रवाई में फंसा दिया

गया था उसके वालिद को, जो बिलकुल बेक़सूर थे. दूर तक उनका किसी उग्रवादी संगठन से कोई संबंध होने की गुंजाइश नहीं थी मगर पुलिस के आगे किसकी चलती है... नौकरी से उन्हें तुरंत बरखास्त कर दिया गया था. उनकी कोई जमा-पूंजी भी नहीं थी कि उनके न होने पर भी घर सुचारु रूप से चलता रहे. किसी और स्रोत से भी आवक नहीं थी. समीर की अम्मी ने घरेलू खर्चों में जोड़-तोड़ कर जो बचा रखा था, वह भी समाप्त-प्राय था. उसके वालिद की गिरफ़्तारी हुए तक्ररीबन एक माह बीत चुका था. कैसे बीता था, यह तो कोई उनसे ही जाकर पूछे... ऐसे में एक समीर ही था जिसे कुछ करना था.

इन सारी बातों से वाबस्ता शाब्दिता ने उसे मानसिक रूप से बहुत सहारा दिया. तमाम घटनाओं की जानकारी लेने के बाद वह समीर से बोली, 'तू चिंता मत कर, समी... तेरे पिताजी ने कोई ग़लत काम नहीं किया है तो वे जल्द ही छूट जायेंगे... फिर से खुशहाली आ जायेगी...'

समीर ने उसे इस आपदा की गंभीरता से अवगत कराते हुए कहा, 'इतना आसान नहीं है शाब्बू... हम सोच भी नहीं सकते, उससे कई गुना ज़्यादा गहन मसला है यह... जिन धाराओं को मेरे बेगुनाह पिता पर चस्पा कर दिया गया है, उन से छुटकारा बेहद मुश्किल है...'

'तू हिम्मत ना हार, समी... भगवान सब ठीक करेगा.' शाब्दिता ने उसे सांत्वना दी. 'मेरे पास कुछ पॉकेट मनी मैंने बचा रखा है, वह मैं तुझे कल ला दूंगी. बाद में भी कोई न कोई व्यवस्था हो जायेगी...'

वे दोनों मोहल्ले के पार्क में सुनसान कोने की एक बेंच पर बैठे थे. शाब्दिता की हौसला-अफ़ज़ाई से प्रवृत्त हो आसपास किसी को न देख एकाएक उसने शाब्दिता को बांहों में भरकर चूम लिया. देर तक वे उसी अवस्था में बने रहे. फिर कहीं किसी आहट को सुनकर अलग हुए.

शाब्दिता के इन विश्वास भरे बोलों से समीर आश्वस्त हुआ. उसने निश्चय कर लिया कि वह नौकरी करेगा. इस-उस स्थान पर भटकता रहा लेकिन एक दसवीं पास को कौन नौकरी देगा और ऐसी-वैसी मिल भी गयी तो कितना वेतन मिलेगा... वह परेशान हो गया. शाब्दिता की आर्थिक मदद से दो जून की रोटी तो मुहैया हो जा रही थी मगर कब तक...

शाब्दिता की भी अपनी मर्यादाएं थीं. एक तो वह हिंदू, समीर मुसलमान. इस रिश्ते को वह अपने मां-बाप को

बता भी नहीं सकती थी. दूसरे, वह पैसों का बंदोबस्त करे भी कहां से... अपने इस प्यार को वह छिपा कर रखे, इसी में उसकी भलाई थी कि हो सकता है भविष्य के गर्भ में इसका कोई सुलझाव छिपा हो...

इसके बरक्स समीर दिन-ब-दिन गुस्से में पागल हुआ जा रहा था. न आजीविका का कोई साधन मिल पा रहा था, और न उसके निर्दोष वालिद के छूटने की कोई सूत दिखाई दे रही थी. एक मर्तबा तो तैश में आकर उसने अपने अबोध छोटे भाई को बेवजह पीट दिया, जिसने भोलेपन से पूछा था — ‘भइया, अब्बू हमें छोड़कर कहां चले गये ?...’ उसका आक्रोश उत्तरोत्तर बढ़ रहा था क्योंकि वह लाचार था. अम्मी की आंखों का एकसार आंसुओं से भरे-भरे रहना, उसकी नसों में कुछ कर बैठने के लिए जोश भरता रहता लेकिन... वह गालिब का शेर तब अकेले में गुनगुना उठता... ‘रगों में दौड़ते-फिरने के हम नहीं क्रायल, जो आंख ही से ना टपका तो फिर लहू क्या है.’

इन्हीं बेचारगी और क्रोध की घड़ियों में एक रात उसके घर की कुंडी किसी ने खटखटायी. बारह बज चुके थे. इस बेवक्रत कौन आया होगा... साहस कर उसने दरवाजे की सांकल खोली. सामने एक अजनबी था. साफ़-शफ़फ़ाफ़ कुर्ता-पाजामा, सर पर नमाज़ी टोपी, दाढ़ी के लहराते सफ़ेद बाल—निहायत शराफ़त में सरापा डूबी शख़्सियत... समीर ने हिचकिचाते हुए पूछा, ‘जी... कौन चाहिए... आपको?’

आगंतुक ने मुस्कराते हुए जवाब दिया — ‘मुझसे डरने की ज़रूरत नहीं है. मैं आपकी मुसीबतों का हल लेकर आया हूं. आप मेरी बात सुन लीजिए... फिर आपकी मर्जी, चाहें तो मेरी सलाह क्रबूल करें या न करें, मैं जैसे आया हूं, वैसे ही लौट जाऊंगा.’

समीर ने बुजुर्गवार को गौर से देखा. उनका कहना क्या है, जान लेने से खुद को रोक न सका. एक ओर हटकर बोला, ‘भीतर आ जाइए.’

बैठक में कुर्सी पर टिकते ही उनकी निगाह चिलमन की ओट में खड़ी समीर की अम्मी पर पड़ी. उन्होंने उस तरफ़ देखते हुए इसरार किया — ‘आप भी आ जाइए... मुझ बूढ़े से क्या परदा...!’ उनके चेहरे पर मुस्कान थिरक उठी. सफ़ेद दाढ़ी को सहलाते हुए ज्यों उन्होंने अपनी उम्र का वास्ता दिया. अम्मी को इसमें कुछ भी नागवार नहीं लगा. वे हौले-हौले चलते हुए दीवान के कोने पर आ बैठीं.



यकायक उनका लहजा बदला — उन्होंने आग-सी उगलते हुए कहा, ‘यह जो भी आपके साथ दर्दभरा नाईसाफ़ दौर गुजरा है, यही... क्या इतना नाकाफ़ी है जो आप चुप्पी ओढ़े निढाल रहें यूं ही...?’

समीर अटकते हुए बोला, ‘हम... हम कर भी क्या सकते हैं...’

‘इंतकाम... अंग्रेज़ी में कहावत है — टिट फ़ॉर टैट... वैसे मैं खुले ख्यालात का हूं. गांधीजी ने कहा था — आपके एक गाल पर कोई थप्पड़ मार दे तो दूसरा आगे कर उसे शर्मसार किया जा सकता है. लेकिन यहां तो दोनों गालों पर थप्पड़ पड़ चुका है...’

अम्मी ने सहमी-सी आवाज़ में शुबहा ज़ाहिर किया — ‘हमारे तो दोनों हाथ कट चुके हैं भाईजान, हम थप्पड़ मारने का हौसला लायें कहां से...?’

उनकी सूत पर कई भाव आये, गये. वे मुलामियत-से बोले, ‘मेरे पास इसका इलाज है. बस आप लोग ‘हां’ कर दें. हम काफ़िरों को ऐसा सबक सिखायेंगे कि उनके मुंह से उफ़...उफ़... निकलता रहेगा.’

समीर को यह मशविरा रास तो आ रहा था मगर इससे उसकी माली हालत तो सुधरने से रही... वह अम्मी के नज़दीक जा खड़ा हुआ जैसे मिलकर इस सुझाव का

विरोध करना हो — “चचा जान, आप हमें बदला लेने के लिए चाहें उकसा लें, उससे हमारा आबो-दाना और भाई-बहनों की परवरिश का मसला तो सुलझने से रहा...”

“उसकी फ़िक्र आपको नहीं, मुझे करनी है. आप मेरी बतायी राह पर चल निकलेंगे तो आपकी झोली में दुनिया भर के साजो-सामान आप ही टपक पड़ेंगे. खुदा जब देता है तो छप्पर फाड़कर... इस कथन पर आपको यक्रीन हो जायेगा...”

अम्मी और समीर की नज़रें मिलीं. मन में व्याप्त रोष विवशता के साथ एकमेक हो उनके ज़मीर के सूरज को धुंध के घने स्याह बादलों में लपेटता जा रहा था. वे जान-समझ रहे थे कि अब शायद यही तरीक़ा बचा है...अम्मी ने ही उनकी राय को तवज्जो देने की पहल की — “हमें करना क्या होगा और हासिल क्या होगा...”

“आज के लिए इतना ही बस है कि आपको इस सब के ऐवज में भरपूर मिलेगा, जो आपने कभी सोचा भी नहीं होगा. और इसके वास्ते करना क्या है, मैं समीर को कल दोपहर दो बजे आने पर सिलसिलेवार समझा दूंगा. अपने शहर की बड़ी मस्जिद के अहाते में जो दुकानें हैं, वहीं मेरी भी है. किसी से भी पूछ लेना अमन चाचा की कौन-सी है.... इतना मैं भरोसा देता हूँ कि इसकी जान को कोई जोखिम नहीं होगा...”



अब दूसरे अभियान पर निकला था समीर. अमन चाचा ने उसको पहले काम का ही इतना मुआवज़ा दे दिया था कि बरसों की फ़िक्र मिट जाये. इसी से प्रोत्साहित हो मज़बूर समीर को यह मार्ग इतना सरल, सहज और कमाई का माध्यम लगा कि वह अपने विवेक को कहीं दुत्कार कर भगा चुका था. उसके अब्बू के संग जो भी बर्बरता बरती गयी थी, वह उसके रक्त के रेशे-रेशे में समाहित हो अच्छे-बुरे के निर्णय से उसे बहुत-बहुत दूर ले आयी थी. अपनी मुफ़लिसी का वह ख़ौफनाक अरसा उसके कोप में तड़के का काम करता रहा था. उसने अपनी आदर्शवादिता से मुंह मोड़ लिया था, बल्कि ऐसा करने के लिए परिस्थितियां उसे बेहिस कर गयी थीं. इन दिनों वह शाब्दित्ता से मिलने को भी जानबूझकर टालता रहा था. इस दूसरे मिशन पर जाते हुए उसका सारा ऊहापोह ख़त्म हो गया था, जो पहली बार उसे बार-बार झंझोड़ता रहा था.

उस तीर्थ स्थान, जो भोले शंकर के मंदिर के नाम से प्रख्यात था, के एक छोटे-से होटल में वह आ रुका था. अगले दिन महाशिवरात्रि के अवसर पर, जिस पहाड़ पर मंदिर स्थित था, उसकी तलहटी में मेला लगना था. सुबह-सुबह जब वह होटल से बाहर आया, वह कहीं से समीर नहीं लग रहा था.... उसने पुलिस कांस्टेबल की यूनिफ़ॉर्म पहनी हुई थी और एक डंडा उसके हाथ में था.

पहाड़ी पर सीढ़ियों से चढ़ने के पश्चात एक बिलकुल कम चौड़ा रास्ता उस छोटी-सी गुफा तक जाता था, जिसमें शिवलिंग की पूजा-अर्चना की जाती थी. उस रास्ते — रास्ता भी क्या पगडंडी पर मात्र दो व्यक्तियों के चलने की जगह थी, एक आ तो दूसरा जा सकता था. इतना संभालते हुए चलना होता था कि आपका संतुलन थोड़ा बिगड़ा नहीं कि आप नीचे कई-कई मीटर अथाह खाई में, जिसमें झांकने पर नीले-नीले कोहरे के सिवा कुछ दृश्यमान नहीं होता था.

इस तंग पैदल-पथ के क़रीब बीच में हल्के-से मोड़ पर एक ज़रा उभरी हुई चट्टान थी. इसके विषय में उसे प्लान में पहले ही बता दिया गया था. समीर डंडा घुमाकर रौब गांठते हुए जाकर उसी चट्टान के दाहिने खोह-सी बनी जगह में खड़ा हो गया. वहां से उसे दर्शन को जाने वाले दो-एक ही पर वापिस आ रहे सभी भक्त दृष्टिगत हो रहे थे. उसकी उपस्थिति से सभी में अनुशासन-सा आ गया था.

उसे लगा कि श्रद्धालुओं की तादाद में बेहतर इज़ाफ़ा हो गया है और वे खाई की उतनी परवाह न करते हुए अपनी धुन में कुछ जल्दबाज़ी दिखा रहे हैं. मौक़े को ताड़कर उसने दर्शन कर आ रहे एक साधारण-से आदमी, जो किसी युवती के एकदम अनंतर था, को लक्ष्य कर अपने डंडे से उस पर वार करना शुरू कर दिया — “स्साले, जवान औरत देख छेड़ रहा है... मां-बहन नहीं हैं क्या?...” उसके डंडे की चपेट में इधर-उधर के दो-चार लोग भी उसने इरादतन ले लिये थे. भीड़ में हड़बड़ाहट तारी हो गयी थी. वह डंडे को और-और लंबा कर गालियों के साथ उन पर निष्ठुर प्रहार करने लगा. जो-वो अपनी जान बचाने को दिशाहीन भागने लगे. लेकिन वह मैदान तो था नहीं कि वे मनमानी दौड़ लगा पाते. औरतें-बच्चे, बड़े-बूढ़े ही नहीं युवक-युवतियां भी अचानक हुए इस हमले से घबराकर स्वयं को सुरक्षित करने के प्रयास में अन्यों को धक्का दे-देकर कहीं आश्रय पा लेना चाहते थे... पर आश्रय तो उन्हें

मिल रहा था उस खाई की गहराई में. अनेक लोग किसी पुतले की मफ़िक पहाड़ी की खुरदरी सतह से टकराते हुए नीचे भीषण अंधेरे में गुम हुए जा रहे थे. चट्टान के साये में खड़ा समीर लगातार उन पर मुंह से कम, डंडे से ज़्यादा आघात किये जा रहा था.

जब दोनों ओर से आवागमन कुछ थम-सा गया, वह अपना डंडा फटकारते, कान पर मोबाइल लगाये और चिल्लाते हुए वापिस चल पड़ा — “आगे धोखा है. वहीं रुके रहो. मैं पुलिस चौकी फ़ोन कर रहा हूँ... जाकर और पुलिस लेकर आ रहा हूँ... एम्ब्युलेंस भी...”

इस तरह की वारदातें हमारे देश में बहुतायत से होती रही हैं... २७ अगस्त, २०१३ को नासिक में गोदावरी नदी के किनारे चालीस; २५ जनवरी, २००५ को मंधार देवी के मंदिर परिसर में तीन सौ; २७ मार्च, २००८ को मध्य प्रदेश के करिला गांव में आठ; २००८ की ३ अगस्त को हिमाचल प्रदेश के नैनादेवी मंदिर के पास एक सौ चालीस; २००८ की ही ३० सितंबर को जोधपुर के मेहरानगढ़ किले के चामुंडा देवी मंदिर के आसपास दो सौ बीस; ४ मई, २०१० को उत्तर प्रदेश के राम-जानकी मंदिर में तिरसठ; १४ जनवरी, २०१३ के दिन केरल के सबरिमाला मंदिर में सौ; गंगा नदी के तीर पर हरिद्वार में ६ नवंबर, २०११ को बाईस; गुजरात में जूनागढ़ के भावनाथ मंदिर के महाशिवरात्रि मेले में १९; फ़रवरी, २०१२ को छह; १३ अक्टूबर, २०१३ को मध्यप्रदेश के दतिया ज़िले के मंदिर की ओर जाते पुल पर कम से कम नब्बे और समीर खूब जानता था — पिछले दिनों गजाधर मंदिर में ग्यारह स्त्री-पुरुष-बच्चे-बूढ़े दर्शनार्थी काल के ग्रास बन गये थे. ये सारे सरकारी आंकड़े हैं, असल में कितने मरे, कितने घायल हुए या कि अपाहिज कौन जानता है?...

बहरहाल, समीर सही-सलामत न केवल अपने होटल अपितु अपने शहर भी शाम तक लौट आया था. उसके पास बैग के अलावा एक ब्रीफ़केस भी थी, जब वह देर रात को लड़खड़ाते हुए अपने घर की कुंडी बजा रहा था. कहना न होगा कि ब्रीफ़केस नोटों से भरा था. अम्मी ने दरवाज़ा खोला. उसने उनको ब्रीफ़केस सौंपते हुए अपनी लहराती आवाज़ पर बहुत संयम बरतते हुए कहा, ‘अम्मी, इसमें इतने सारे पैसे हैं... अब हम पुलिस के हलक में उन्हें टूस-टूसकर अब्बू को छुड़ा लायेंगे... ‘अम्मी को खुश होते देख

## गीत

### फिर वासंती दिन आये !

✍ प्रो. अभिषेक राजेंद्र मिश्र

सांस हुई दूधर, मद-भृंग गुनगुनाये,

वैरी प्रीतम बन, वासंती दिन आये ॥

‘कुहू-कुहू’ कूक उठी कोयल मतवाली,

‘पिहू-पिहू’ रटते फिर पपीहे बौराये ॥

महुवा के कूच-कूच मोती के दाने,

अमवारी के रसाल फिर हैं पियराये ॥

सेमल के वृंत-वृंत पड़ गये फफोले,

दहकते कलेजे पलाशों ने दिखलाये ॥

भटकने लगी फिर आवारा सी पछुवा,

भूली बिसरी डायन लू के दिन आये ॥

छलने फिर लगी कलमुंही मृगमरीची,

प्यास यह निगोड़ी हाय, दर-दर भटकाये ॥

फिर बगुले जन्म कुंडली पढ़ने बैठे,

‘कालसर्प-योग’ फिर मछलियों के छाये ॥

सौंप दिया ठांव-छांव, शीशबंधी गगरी

ताड़ ने जवारों में सोमरस पिलाये ॥

❦ पूर्व कुलपति, सनराइज़ विला,

लोअर समर हिल, शिमला-१७१००५

वह संतुष्ट होकर बोला, “मैं बुरी तरह थक चुका हूँ. खाना खा लिया है, अब सोने जा रहा हूँ.” अम्मी की अनुभवी दृष्टि ने उसकी हालत का जायज़ा ले तो लिया था पर वे खामोश बनी रहीं...

□

सवेरे चाय पीते हुए समीर अखबार में कल के समाचार को पढ़ते हुए अपनी ही पीठ थपथपा रहा था. पहले ही पन्ने पर उस हादसे की खबर मोटे-मोटे शीर्षक के साथ पूरे विस्तार से प्रकाशित थी. कहीं कोई किसी पुलिस की ज़्यादती का ज़िक्र नहीं था, जैसी कि वह अपेक्षा कर रहा था. कारण, जिन्हें सच पता होता है, उनका मुंह तो पहले ही बंद हो चुका होता है. कई क्रयास लगाये जा रहे थे कि यह हुआ होगा, वह हुआ होगा. हां, एक पुलिस वाले ने लोगों की सहायता की, यह उल्लेख अवश्य था. उसे अपने

पराक्रम पर नाज़ हो आया.

उसकी बहन ने उस दुर्घटना का वृत्तांत उसके उठने से पूर्व ही पढ़ लिया था. वह चाय का कप देने के बाद भी किसी बुत-सी वहीं खड़ी हुई थी. समीर ने जब अखबार को मोड़ कर स्टूल पर रखना चाहा, उसे उसका यों खड़े रहना अटपटा लगा. उसने सोचा कि वह क्या जाने कि उसके इसी भाई ने इस शौर्य को अंजाम दिया है. उसे यह सब राज़ रखे रहने की अल्लाहताला के नाम पर क्रसम दी गयी थी. वह चाहकर भी उसे कुछ बता नहीं सकता था. उसने उसके यों रुके रहने की वजह जानने के लिए पलकें उठाकर देखा...

उसकी बहन तबस्सुम की आंखों में आंसू देखकर वह चौंक उठा — “क्या हुआ तबू, तुम रो क्यों रही हो...?”

तबस्सुम हिचकियां लेते हुए और ज़ोर से रो पड़ी. आवाकू समीर झटके से उठ खड़ा हुआ. तबस्सुम के कंधों को पकड़ कर हिलाते हुए उसने पूछा, “क्या हुआ, बता तो...”

तबस्सुम ने खुद को संभालते हुए किसी तरह कहा- “भइया... आपने खबर के... आखिर में मरने वालों के नाम... नहीं देखे शायद... न... नहीं रही... वह... आपकी दोस्त... शाब... शाब्दिता... इस हादसे में वह भी गहरी खाई में कहीं स... समा...” अंतिम शब्द उसकी सिसकियों में डूब गये.

समीर तबस्सुम के कंधों को बेतहाशा झकझोरते हुए चीख पड़ा — ‘क्या कह रही हो... तबू...!’ फिर पलटा और अखबार के पन्नों को किसी दीवाने जैसा देखता रहा. उसकी नज़र वहां जा टिकी, जहां मृत लोगों के नाम दिये गये थे. उसने अखबार को तोड़-मरोड़ कर एक ओर फेंका और धम्म से कुर्सी में समा गया. उसकी आंखें आवश्यकता से अधिक चौड़ी होकर शून्य में अटक गयीं, होंठ खुले के खुले रह गये. जैसे वह अपना होश खो बैठा हो... तबू ने उसके नज़दीक आकर झट उसके सर को अपने हाथों से थामकर अपने पेट से सटा लिया और आर्तनाद कर उठी — ‘भइया!...’

इस चीख-चिल्लाहट को सुनकर अम्मी और छोटे भाई-बहन सब दौड़कर आये. समीर को अम्मी ने हिलाया-डुलाया — ‘क्या हुआ बेटे...!’ उसकी तंद्रावस्था से भयभीत हो उसे अपने करीब खींच लिया और तबू की ओर सवालिया निगाह डाली. तबू ने रोते-रोते वह दुखदायी वाक्या बताया. तबू से छोटी बहन तुरंत पानी का गिलास लेकर आयी.

## गज़ल

### सच्चिदानंद 'इंसान'

जाने क्यों हर ज़ब्त चुप था चुप रहीं खामोशियां ।  
फिर भी तेरे बर्बो-गम को कह गयीं खामोशियां ॥

जानता हूं हर खुशी रूठी है तुझसे बेज़बान ।  
मुद्दतों से कहती आयी अनकहीं खामोशियां ॥

वक्त के संग बदले कितने रंग तो गुलशन भी थे ।  
क्यों मगर बदली निगोड़ी थी नहीं खामोशियां ॥

जब परिदे लौट आते शाम में शाखे-शज़र ।  
शोरो गुल एक लम्हे भर की फिर विखीं खामोशियां ॥

हो गया अरसा तिर लब पे किसी मुस्कान की ।  
आयेगी लेकर तबस्सुम है यक़ी खामोशियां ॥

दस्तकें इंसान ने दीं दर पे तेरे अनगिनत ।  
जाने क्यों हर बार उसको भी मिलीं खामोशियां ॥

सहारा मिशन स्कूल, मुन्दीचक,  
भागलपुर-८१२००१. (बिहार)

अम्मी ने उसमें से पानी के चंद छीटे समीर के चेहरे पर छिड़के और उसे दो घूंट पानी पिलाया. समीर की आंखें धारासार बह रही थीं. वह कुछ बेहोश होकर अपने गालों पर एक के बाद एक थप्पड़ें मारता रहा. फिर बालों को मुट्टियों में जकड़ चीत्कार कर उठा — ‘शबू, मुझे माफ़ कर दो..’ उसने दोनों हथेलियों के बीच अपना सर थाम लिया और फफक-फफककर रोने लगा...

कहीं दीवारों से गुंजायमान होती रहीं सर्वेश्वर की कविता की पंक्तियां...

‘सारी ज़िंदगी

मैं सर छिपाने की जगह

हूँदता रहा

और अंत में अपनी हथेलियों से

बेहतर जगह दूसरी नहीं मिली...’

बी-४०, एफ-१,

दिलशाद कॉलोनी,

दिल्ली-११० ०९५.

मो. : ९९७१७४४१६४.

ई-मेल : ashokgujarati07@gmail.com



## जद्दोजहद तेरा नाम ज़िंदगी

अशोक गुजराती

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार खत्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुत्री सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड्से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सररीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्रिहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांला, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी और जयप्रकाश त्रिपाठी से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है अशोक गुजराती की आत्मरचना.

**दूर** तक मेरे पिताजी या मां के खानदान में कहीं किसी साहित्यकार का अस्तित्व नहीं रहा. फिर मेरा बचपन याकि युवावस्था से लेकर अब तक. पिछले सात वर्षों को छोड़कर समूचा जीवन बीता महाराष्ट्र में. मराठी माध्यम — उन दिनों अंग्रेज़ी होता ही नहीं था, केवल मुट्ठी-भर कॉन्वेंट स्कूलों के सिवा — ही रहा दसवीं तक. दसवीं के बाद चूँकि विज्ञान प्रभाग में दाखिला लेना ही था. वहां हो गया अंग्रेज़ी मीडियम. घर में मातृभाषा रही गुजराती. हिंदी उतनी ही थी, जो राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की परीक्षाओं ने सिखायी. वर्ना तो मराठी भाषी हिंदी के शिक्षक ने उसे बिगाड़ने में कोई कसर नहीं उठा रखी.

जब मैं प्री-यूनिवर्सिटी में था, भाषा के तहत वैकल्पिक विषय मराठी के ऐवज़ में लिया हिंदी. उसका कारण था. मेरे बाबूजी हाईस्कूल के हेडमास्टर थे. धाराप्रवाह मराठी बोलने वाले. पता नहीं क्यों उन्होंने मराठी की एक-दो पत्रिकाओं के साथ हिंदी की भी प्रतिष्ठित पत्रिकाएं नियमित लगायी हुई

थीं. धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, पराग इत्यादि. अर्थात् ये सारी पत्रिकाएं अंग्रेज़ी, हिंदी एवं मराठी अखबारों के संग एजेंट घर पर ही दे जाता था. मैं उनके पत्रे पलटाता और थोड़ा-बहुत पढ़ ही लेता था. पराग में कामिनी कौशल अपना स्तंभ चलाती थीं. मैंने. मुझे याद है. अपनी टूटी-फूटी हिंदी में उनको पत्र लिखा था, जो उन्होंने प्रकाशित भी किया था. शायद इन्हीं पत्रिकाओं ने हिंदी के प्रति मेरी रुचि बढ़ायी.

लेकिन कॉलेज में पहली त्रैमासिक परीक्षा ने ही मुझे बड़ा झटका दे दिया. मैंने हिंदी के परचे में बहुत मन से प्रश्नों के विस्तृत उत्तर लिखे थे. मुझे मिले थे सौ में से महज़ पच्चीस नंबर. मैं गया हिंदी के अयाचित सर के पास और लगभग पूरे जोश में पूछ लिया कि मैंने इतने बढ़िया जवाब लिखे हैं. तब भी... वे मुस्कराए, “बेटा, हिंदी साहित्य से इतना लगाव है तो पहले शुद्ध लेखन सीखो. तुम्हारी मात्राओं आदि की इतनी अशुद्धियां तुम्हारे वाजिब वर्णन को भी ग़लत कर देती हैं.”

मेरी आंखें खुलीं. जितनी चाहिए उतनी नहीं क्योंकि सामने थी विज्ञान की पढ़ाई. पिताजी चाहते थे कि मैं डॉक्टर बनूं इसीलिए बायोलाॅजी में प्रवेश लिया था. यह विवशता ही लगती रही. हिंदी नाटकों में अभिनय, लाइब्रेरी से हिंदी किताबें लाकर पढ़ना और हिंदी फ़िल्में देखना जारी था. आठवीं में लिखी थीं कुछ अनघड़ कविताएं अब फिर उसी तरफ़ झुकाव होता रहा. मेडिकल में जाना तो संभव था नहीं पर विज्ञान में घुस चुके थे तो बी. एस-सी. और तत्पश्चात एम. एस-सी. तक बढ़ते चले गये.

इस बीच ढेरों किताबें पढ़ीं. नौवीं कक्षा में रवींद्रनाथ का 'गोरा' उपन्यास पढ़ लिया था. पिताजी द्वारा शुरू की गयी हिंद पॉकेट बुक्स की पांच की क्रीमत में छह किताबों की घरेलू लाइब्रेरी योजना के अंतर्गत हिंदी तथा अन्य भाषाओं के प्रख्यात लेखकों की कई-कई पुस्तकें घर पर आयीं, जिन्हें मैंने बेहद चाव से पढ़ा. यह शौक मुझे मां से विरासत में मिला था. उन्होंने घर-पहुंच लाइब्रेरी लगायी हुई थी. यह बात और कि उसमें मराठी या हिंदी की एकदम साहित्यिक किताबें नहीं मिलती थीं परंतु उनकी इस पढ़ाकू आदत के जीनस् बेशक मुझमें भरपूर मात्रा में अंतरित हुए थे. यह सब था किंतु किसी ने मेरी भाषा की त्रुटियां कभी नहीं सुधारीं.

हां, जब मैं नागपुर में केमेस्ट्री का लेक्चरर बन गया, तब दोस्ती हुई प्रवीण तन्मय से. उस वक़्त तक मैंने कई गीत, गज़लें और नज़में लिख ली थीं. मुझे गाना तो क्या कभी वज़न में गुनगुनाना भी नहीं आया. मात्राओं के मिलान की जानकारी नहीं थी. मैंने तो अपने आपको तैयार किया था प्रकाश पंडित द्वारा संपादित उर्दू शायरी की अनेक पुस्तकें पढ़कर. आप हंसेंगे नहीं तो सच्चाई बतलाता हूं, जो बाद में मुझे प्रवीण की सुमधुर आवाज़ में उसके गीत, गज़लें सुनते हुए और मेरी रचनाओं को उसके द्वारा न गा पाने की वजह से तुरंत समझ में आ गया कि मैं पहली पंक्ति के अक्षरों की संख्या के साथ दूसरी पंक्ति के अक्षरों की संख्या समान कर उसे गेय रचना मान लेता था. तब रह गयीं कुछेक अतुकांत कविताएं. वर्ना तो मैं तक़रीबन ख़ाली हो चुका था.

नागपुर से अकोला के कॉलेज में आ गया ताकि अपने माता-पिता, जो शेगांव में रहते थे और सेवा निवृत्ति की कगार पर थे, के नज़दीक आ सकूं. वहां पर एक अनूठे साहित्यिक माहौल से परिचय हुआ. कैलाश सेंगर, घनश्याम

अग्रवाल, प्रकाश पुरोहित, प्रमोद शुक्ल और बाद के वर्षों में दामोदर खड्गसे एवं सुभाष काबरा अभिन्न होते गये. हमारी संस्था थी 'अक्षर' वहां न सिर्फ़ कविताएं सुनी जाती थीं बल्कि उनकी चीरफाड़ भी होती थी. ये सारे मित्र मुझसे अधिक सक्रिय थे.

मैंने अपने बड़े भाईसाहब के बहकावे में आकर एक कारखाना शुरू किया, जिसमें रसायन बनाया जाता था. अच्छा हुआ कि मैंने अपनी व्याख्याता की नौकरी इस चक्कर में नहीं छोड़ी क्योंकि हमारे इंडस्ट्रीज़ ऑफिसर भाई साहब की योजना महज़ कागज़ी थी, जैसे वे हर आरंभिक उद्यमी को समझाते थे. उस कारखाने के बंद होने, फिर उसका कर्ज़ चुकाने और मशीनें एवं प्लॉट-इमारत को रास्ते लगाने में मेरे कई साल बर्बाद हो गये. मन अशांत रहा, धन की हानि हुई पर स्वयं को किसी प्रकार संभाल लिया.

बेहतर यह हुआ कि इस दौरान मैंने अपने साहित्यिक दोस्तों से निकटता बनाये रखी. धर्मयुग, सा. हिंदुस्तान जैसी पत्रिकाएं और सामयिक किताबें पढ़ता रहा. छुट-फुट लिखता भी रहा. मराठी का एक शब्द है 'पंड' जिसका मतलब है आंतरिक पुकार (जेनेटिक इंस्टिंक्ट), वह मुझमें साहित्य के प्रति जीवित रहा. हां, यह अंतश्चेतना भी दृढ़ हो गयी कि भय्ये, तेरा क्षेत्र पद्य नहीं है, अपनी पहचान गद्य में बना.

मेरी गद्य रचनाएं इधर-उधर छपने लगीं. धर्मयुग में अनेक बालकथाएं और लेख प्रकाशित हुए. सा. हिंदुस्तान में भी. लघुकथाएं भी छपीं. कहानियां भी आने लगीं. ख़ासकर नवभारत टाइम्स में. लेकिन धर्मयुग से सदा वापस लौटती रहीं. धर्मवीर भारती का अनुशासन ही कुछ ऐसा था जबकि तब तक मेरा दोस्त कैलाश सेंगर भी वहां जा चुका था. अंततः वहां भी कहानी छपी 'भड़ास'. इससे हौसला बढ़ा. सारिका में बहुत-सी लघुकथाएं लगातार आती रहीं पर कहानी स्वीकृत हुई और पत्रिका बंद हो गयी. ऐसा मेरे साथ अक्सर हुआ है.

मुंबई से जनसत्ता ने साप्ताहिक 'सबरंग' आरंभ किया. उसके फ़ीचर संपादक थे धीरेन्द्र अस्थाना. उन्होंने मेरी कहानियों, कविताओं तथा लघुकथाओं को उसमें स्थान दिया. दिनमान, पराग, वैचारिकी, आजकल, कथाबिंब, बालभारती, साहित्य अमृत इत्यादि ने प्रकाशित कर गौरवान्वित किया. नागपुर के लोकमत समाचार के प्रकाश चंद्रायन ने

कहानियां, कविताएं, लघुकथाएं, लेख, धारावाहिक किशोर उपन्यास ही नहीं छोपे, मैं अखबार में साप्ताहिक स्तंभ 'रंग-बेरंग' भी लिखता रहा, जो लगभग तीन वर्ष चला. 'नई दुनिया' के सरोज कुमार ने भी कई रचनाएं दीं. एक समय ऐसा भी आया कि हर माह में चार-पांच पत्र-पत्रिकाओं में मुझ नाचीज़ को जगह मिल ही जाती थी. नाचीज़ इसलिए कहा कि जैसा संज्ञान मिलना अपेक्षित था, वैसा नहीं मिला.

यह सब मैंने हिंदी में बीए, एमए और पीएच-डी. हासिल करते हुए किया. मैं ही जानता हूँ कि मैंने किस तरह यह सारा समायोजित किया. मैं कॉलेज में केमेस्ट्री पढ़ाता था. जी हां, साहित्य के एकदम विपरीत विषय. केमेस्ट्री. सुबह सात बजे कॉलेज जाकर लौटते हुए साढ़े बारह-एक बज जाते थे. आकर खाना खाने के बाद मैं एक घंटा सो जाता था. उठने के उपरांत प्रारंभ हो जाता था हिंदी साहित्य का पीरिएड, जो कमोबेश रात में दस बजे तक चलता था. भोजन कर दूसरे दिन पढ़ाने के केमेस्ट्री विषय की तैयारी, जो अधिक देर नहीं चलती थी. बस, पन्ने पलटाकर सब मस्तिष्क में व्यवस्थित करना होता था. आप यकीन नहीं करेंगे लेकिन ऑर्गेनिक केमेस्ट्री में भी मेरी मास्टरी थी. फिर भी इन दो नावों पर पैर जमाकर संतुलन के साथ किनारे पहुंचने में अच्छी खासी कसरत हो ही जाती थी. संतुलन की मिसाल यह कि मैंने आठ वर्ष तक अंशकालीन व्याख्याता के तौर पर अपनी संस्था के ही पड़ोस में स्थित कला महाविद्यालय में एम. ए. हिंदी को भी पढ़ाया. मज़ा आता था जब मैं इधर केमेस्ट्री का पीरिएड खत्म होते ही फ़ौरन फ़्रेंसिंग के उस पार हिंदी साहित्य पढ़ाने निकल पड़ता था.

मुझे हिंदी प्रदेश के किसी लेखक की तरह न ख्यातिनाम साहित्यकारों के सान्निध्य का अवसर मिला, न ही हिंदी भाषा याकि उसकी किसी बोली की छत्र-छाया में हम पले-बढ़े. इधर कुआं, उधर खाईं मुहावरे की मानिंद इस तरफ़ मराठी, उस तरफ़ अंग्रेज़ी के मध्य रसायनशास्त्र की ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर अपने पांव जमाने का प्रयास करता रहा. कोई जान-पहचान नहीं, संपर्क नहीं पर अपनी रचनाशीलता के दम पर एक-एक कोर्स पार करते रहे.

कई बार तो लगा कि यह क़वायद किसलिए. नाम और पुरस्कार तो उनके हिस्से में ही आ रहे हैं, जिनके पारस्परिक संबंध बड़े लोगों से बने हुए हैं. लेकिन एक धुन थी, वह सब कुछ लिखने की, जो समाज में ग़रीब, दुखी,

परेशान जन-जन की विडंबना है, उसे औरों तक पहुंचाने की ईमानदार कोशिश थी यह. कह सकते हैं कि बिना लिखे चैन नहीं मिलता था. आखिर लेखन स्वांतः-सुखाय भी होता ही है.

क्रिताबें प्रकाशित होने लगीं. छोटे-मोटे पुरस्कार भी लाग-लपेट के बग़ैर मिले. टाइम्स की पत्रिकाएं बंद हुई तो कुछ नयी आने लगीं. वागर्थ, नया ज्ञानोदय, आधारशिला, पाखी, हंस, वर्तमान साहित्य, क्रिस्सा जैसी पत्रिकाओं में भी रचनाएं छपीं. साहित्य का केंद्र इलाहाबाद से सरक कर दिल्ली में स्थापित हो गया था. इसका अहसास था और जो भी पुस्तकें आयीं, दिल्ली के प्रकाशकों से ही. लेकिन पहली श्रेणी के तथाकथित प्रकाशक किनारा कर लेते थे. यही प्रतिक्रिया कुछ पत्रिकाओं से भी मिलती रही. वजह केवल निजी संसर्ग की थी. मैं यह सब जानते-समझते दिल्ली में साहित्य अकादमी और दीगर संस्थाओं में रिक्त पदों हेतु आवेदन भी भेजता रहा. इंटरव्यू भी हुए. परिणाम वही, जिनकी पहुंच थी, वे चुने गये. मैंने अपने को मिल रहे वेतन से भी कम पर दिल्ली आने के प्रयत्न किये पर नहीं हो सका.

मैंने रूसी भाषा में डिप्लोमा किया है. यह देखते ही तब के 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद' के चेयरमन श्री वसंत साठे ने मुझसे सवाल किया. 'आप यहां क्या कर रहे हैं ... आपको तो रशिया में होना चाहिए...' उन्होंने अपने सचिव से कहा, 'इनका तुरंत बंदोबस्त करो...' तभी चुनाव आ गये. उन्होंने परिषद से इस्तीफ़ा दे दिया. और मेरी तथा उनकी बदक्रिस्मती कि वे चुनाव भी हार गये. मैं भारत में ही बना रह गया.

मैं एम. एस-सी. और हिंदी में पीएच-डी. हूँ. इंदिरा गांधी मुक्त वि. वि. का दूर शिक्षा में डिप्लोमा किया है. वहां से इन्हीं अर्हताओं के वास्ते एक पद घोषित हुआ. मैंने सर पटक लिया परंतु मालूम नहीं हो सका कि वह पद आज तक रिक्त है या किसी चहेते को वह दे दिया गया है. ख़ैर! इन सब नाकामियों को भुला देना ही बेहतर है.

ऐसा भी नहीं था कि मेरा नाम नहीं था. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में मेरी अब तक साढ़े पांच सौ से अधिक रचनाएं छप चुकी हैं. लोग पढ़ते तो हैं ही. चाहे वे ही जिनका साहित्य से थोड़ा-बहुत भी अनुराग है अथवा जो कुछ न कुछ लिखते हैं. प्रकाशक और संपादक यह तो मानते हैं कि आपको पढ़ा है... आपको कौन नहीं जानता... पर इसके



आगे के रास्ते पर भीड़ लगी हुई है उनके अपनों की, परिचितों की, चाटुकारों की, जिसको लांघना किसी मराठी भाषी क्षेत्र के संकोची हिंदी लेखक के लिए सचमुच अत्यंत कठिन है।

यह सब देखकर मैंने वह किया, जो साहित्य के लिए करने का माद्दा संभवतः कम में ही होता होगा। अकोला; महाराष्ट्र में मेरा बड़ा-सा बंगला था, जिसे मैंने पूरे मन से नये डिज़ाइन का बनवाया था। उसके चारों ओर बगीचा था। पीछे की तरफ़ अमरूद, शरीफ़ा, जामुन, पपीते के पेड़ थे। सामने लॉन था। पोर्च में कार खड़ी करता था। शहर में वकील क्या, डॉक्टर क्या, कई ऊंचे पदों पर या व्यवसाय में मेरे भूतपूर्व छात्र फ़ैले हुए थे, जो समुचित आदर देते थे। आदर देते थे क्योंकि मेरा विषय रसायनशास्त्र था। डिग्री कॉलेज में होने के बावजूद इंटीग्रेटेड टीचिंग के कारण जूनियर कॉलेज, यानी ग्यारहवीं-बारहवीं को भी पढ़ाता था। बारहवीं की विशेषक परीक्षा, मेडिकल, इंजीनियरिंग में प्रवेश हेतु। पालकों के सर पर चढ़ कर बोलती थी। फिर केमेस्ट्री जैसा मुश्किल विषय... पर मैंने ट्यूशन नहीं ली। अन्यथा आज मैं करोड़पति होता लेकिन लेखक कदापि नहीं।

क्या-क्या नहीं हुआ। डिग्री कॉलेज में सरप्लस हो जाने से मेरा अमरावती के कालेज में तबादला हो गया। मैं तो था दीवाना, अमरावती और बडनेरा के प्लैटफार्म पर रेल की प्रतीक्षा करते हुए और ट्रेन में बैठे-बैठे भी वागर्थ, हंस, कथादेश आदि पढ़ता रहता। इससे हुआ यह कि साहित्य के समकालीन उतार-चढ़ाव से उस 'अप-डॉउन' में भी मैं संपृक्त बना रहा।

हां, तो मैं उत्सर्ग की बात कर रहा था। मैंने अपना वह बंगला और कार कौड़ियों के दाम बेच दिये। मैंने सोचा, पहले तो ज़िम्मेदारियों से बंधा हुआ था, किसी सूरत नौकरी नहीं छोड़ सकता था। अब मैं सेवा-निवृत्त हो चुका हूँ, अब मुझे कौन रोकेगा... मैं जहां चाहूँ, जा सकता हूँ। पेंशन तो मिलेगी ही; जो शुरुआत में बेहद कम थी। क्यों न खुली हवा में सांस लूँ, और मैंने अपने जीवन की दूसरी पारी का यूँ साठ साल का होने पर आगाज़ किया।

काफ़ी कुछ सामान बेचकर केवल ज़रूरत की चीज़ें लेकर दिल्ली आ गये। मैं और मेरी पत्नी। यह सब संभव नहीं था अगर वह साथ नहीं देती। बेटे तो पुणे-मुंबई में स्थापित हो चुके थे। हम दोनों अकोला के परिचितों, मित्रों,

सहकर्मियों को छोड़कर, अपना सुखद निवास त्याग कर चले आये दिल्ली, दिल्ली का आकर्षण ही कुछ ऐसा था।

और यहां आकर ऐसा नहीं कि सफलता नहीं पायी। मेरी क्रिताबें एनबीटीए, शिल्पायन, प्रभात, मेधा से छपीं। रचनाएं भी बड़ी पत्रिकाओं में; शायद मेरे पते की वजह से, क्योंकि मैं अपने स्वभाव की कमज़ोरी के मारे किसी से व्यक्तिगत संपर्क भिड़ा ही नहीं पाता प्रकाशित होती रहीं। फ़िलहाल मेरी और पांच क्रिताबें यहां-वहां से आने वाली है दिलशाद गार्डन के 'बतकही मंडल' का मैं सक्रिय सदस्य हूँ, जिसमें हर रविवार को डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी की उपस्थिति में 'कथादेश' के संपादक हरिनारायण, बलराम अग्रवाल, भारतेंदु मिश्र, मदन कश्यप, उपेंद्र कुमार, रमेश प्रजापति, विभांशु दिव्याल, राजेंद्र नागदेव, विजय जी के अलावा गाहे-ब-गाहे अन्य नामवर साहित्यकार शिरकत करते रहते हैं।

यह सब है किंतु अपने 'मन की बात', मोदी जी की तरह नहीं, करूं तो मुझे यह दिल्ली अब भी अनजानी लगती है, यहां के लोगों से मैं कतई सामंजस्य नहीं बिठा पाता। महाराष्ट्र की सुशांत, सौम्य और सहृदय जनता की स्मृति हरदम बनी रहती है। कहते हैं न कि पौधे को तो आप पुनः रोप सकते हैं, एक फले-फूले वृक्ष को उखाड़कर अन्यत्र गाड़ कर उसकी जड़ों एवं हरेपन के प्रति बेवफ़ाई ही हो सकती है। लेकिन... जब ऊखल में सर दे दिया है तो मूसल से क्या डर !

बि-४०, एफ-१,

दिलशाद कॉलोनी, दिल्ली-११० ०१५.

मो. : ९९७१७४४१६४.

ई-मेल : ashokgujarati07@gmail.com

### डीटीपी के लिए संपर्क करें

समाचार पत्र, पुस्तकों व पत्रिकाओं, इनक्विटेशन कार्ड, विजिटिंग कार्ड के डीटीपी, ले-ऑउट और डिज़ाइन के लिए संपर्क करें.

## सुगी आर्ट्स

३०२, वडाला उद्योग भवन, वडाला,

मुंबई-४०० ०३१.

मो.नं.: ९८३३५४०४९०/९८९२८३९१४६



## ‘गीत पीड़ा से मुक्ति का उपक्रम है!’

✍ दिनेश प्रभात

(गीत, ग़ज़ल, दोहे मुक्तांक आदि काव्य की विभिन्न धाराओं में अपनी कोमल संवेदनाएं अभिव्यक्त करने में सशक्त, समर्थ और प्रतिभावान, गीत मंचों को अपने खनकते स्वर से उद्वेलित करने वाले बहुचर्चित एवं प्रशंसित पत्रिका ‘गीत गागर’ के कर्मठ संपादक श्री दिनेश प्रभात अपनी आत्मीयता एवं सहजता के कारण हर वर्ग में लोकप्रिय हैं और अपनी उन्मुक्त हंसी एवं हृदयग्राही गीतों से अपनी विशिष्ट छाप छोड़ते हैं। अनेकों स्तरीय पुरस्कारों से सम्मानित, सात काव्य संग्रहों के रचयिता टी.वी. एवं आकाशवाणी के चर्चित कवि, श्री दिनेश प्रभात से ‘कथाबिंब’ के लिए श्रीमती मधु प्रसाद की बातचीत प्रस्तुत है।)

❖ दिनेश जी, आपके खनकते हुए स्वर और महकते हुए गीतों की सुंदर बगिया में एक लंबे अरसे से टहल रही हूँ. एक-एक गीत को सम्मुख खड़े होकर निहारा है, आत्मसात करने का प्रयास किया है. गीत, ग़ज़लों के अभिनव अंदाज को, कहन की अपनी विशिष्ट शैली और सार्थक शब्दों के चयन को. आपकी गीत, ग़ज़ल साधना वर्षों से अविराम गति से प्रवहमान है. इससे पूर्व कि मैं आपसे गीत या नवगीत आदि पर चर्चा करूँ, आतुर हूँ एक हंसते, खिलखिलाते आत्मीयता से सराबोर व्यक्तित्व के अतीत में झांकने को – वह कुलांचे मारता, मां-बाबू की उंगली पकड़े मेला देखने जाता, पतंग उड़ाता, नटखट, सरल बचपन.

बचपन की याद मत दिलाइए मधुजी! मन लौट-लौट कर गांव जाता है. गांव से सुंदर दुनिया में कुछ नहीं है. बशर्ते उसे ज़माने की हवा न लगे. पश्चिम की हवाएं उसे लील न जायें. यही ईश्वर से कामना है. हां, पतंग मैंने कभी नहीं उड़ायी. पतंग उड़ाने में दांव-पेंच भी लड़ाना पड़ता है. पतंग भी काटनी पड़ती है, मांझे में धार भी करनी पड़ती है. मेरा भोला मन शुरू से ही दांव-पेंच, काटना-पीटना और धार-वार जैसी चीजों से डरता-बचता रहा है. हां, गिल्ली-डंडे खूब खेले, कंचे खूब खेले, भौरें खूब घुमाये. कभी किसी को जीतने नहीं दिया. सारे साथी मुझसे परेशान हो जाते थे. सबको मुंह लटका कर जाना पड़ता था. स्कूल की आधे घंटी की छुट्टी के बाद गोल मार कर खूब नदी में नहाया. टेढ़े गूलर के शिखर पर चढ़ कर पानी में कूदा, पेड़ों पर खूब चढ़ा. बंदरों की तरह फल खाये. गांव का कोई भी

आम, जामुन, खजूर का पेड़ नहीं बचा होगा जिस पर मेरे पांव के निशान नहीं होंगे. जामुन की कच्ची डाल ने तो मेरा दायां हाथ भी तोड़ दिया. सूखे कुएं में डाल सहित पत्थरों के बीच गिरा सो अलग. गांव में मेला तो नहीं, लेकिन हर हफ्ते हाट लगती थी. काली गाजर खाने का खूब शौक था, पिताजी पटवारी थे. जब भी हल्के से लौटते, पांच का सिक्का देते जिसकी ढेर सारी गाजर आती, हाफ़ पैंट की दोनों जेबों में भरता और शान से ओटले पर बैठ कर खाता. बैलगाड़ी में बैठ कर ननिहाल खूब गया. कभी गर्मी की छुट्टियों में तो, कभी दशहरा-दीपावली में. अब वहां कोई नहीं.

और हां, अब आपकी पहली कुछ पंक्तियों का जवाब. आज के दौर में कौन किसकी रचनाओं को डूब कर पढ़ता है मधुजी? और दिल की गहराइयों से उनकी प्रशंसा करता है. आपने बड़ी साफ़गोई के साथ यह सब स्वीकारा और मुझे बल प्रदान किया. इसके लिए मैं आपका हार्दिक आभारी हूँ. आपके भीतर निश्चित ही मैं एक आदर्श लेखक व संवेदनशील रचनाकार के दर्शन करता हूँ, शुक्रिया!

❖ आपकी जीवन यात्रा बचपन के गलियारे पार करती यौवन की दहलीज यानी पाठशाला, कॉलेज, विश्वविद्यालय पर मौज मस्ती भरे, उमंग भरे सपने लिये कैसे पहुंची? क्या रहीं उन दिनों की बातें, यादें? कविता से कब इश्क हुआ?

आठवीं तक गांव में पढ़ा. आगे पढ़ने के लिए शहर राजगढ़ (ब्यावर) बड़े भाई साहब के पास आया तो बचपन की यादों ने पीछा नहीं छोड़ा. पूरा गांव मेरे साथ चला



: **संपर्क :**

संपादक 'गीत गागर',  
'काव्यधारा', ५६, सम्राट नगर,  
अशोक गार्डन, भोपाल-४६२०२३  
मो.: ९९२६३४०१०८

आया. नदी, खेत, पेड़, चौपाल, मंदिर, दोस्त सभी. ठीक वैसे ही जैसे गैया के पीछे बछड़ा, ग्वाले के पीछे गाय या गड़रिये के पीछे उसकी भेड़ें चली आती हैं. मां का प्यार और उनकी प्यार भरी झिड़कियां सब. उन सब की मीठी-मीठी यादों ने ही मेरे बाल मन में भोली-भाली कविताओं का बिरवा रोपा. फिर इस बिरवे में इतने पत्ते आये, इतने फूल खिले कि ज़िंदगी बगीचे में बदल गयी. इनकी छांव इतनी सघन हुई कि मैं दिन-रात इनकी जड़ों पर सिर रखकर सुस्ताने लगा. पता ही नहीं चला कि कब और कैसे उम्र के ६० वसंत पार हो गये. ऐसा नहीं कि जीवन में मुसीबतें नहीं आयीं, दुख ने द्वार नहीं खटखटाया, आंखें गीली नहीं हुईं या वक्रत ने परेशान नहीं किया लेकिन हर संकट में फूल-सी यही कविताएं मेरे लिए औज़ार बनीं और हिम्मत. विद्यालय और कॉलेज में कविता के इस शौक ने मेरी लोकप्रियता को मानो पंख लगा दिये. चाहे भाषण प्रतियोगिता हो या वाद-विवाद प्रतियोगिता बीच-बीच में शायरी का प्रवेश और असरदार प्रस्तुतिकरण हमेशा मुझे विशेष या प्रथम पुरस्कार का विजेता बनाता रहा. वाद-विवाद में विपक्ष में बोलना मेरा शौक था. विचित्र वेश भूषा प्रतियोगिता में हमेशा महिला का रोल करता था जैसे गांव की गोरी, सेठानी, या लकड़ी बेचने वाली जिसके सिर पर गट्टर रखा होता था. हट कर की जाने वाली इन भूमिकाओं ने मुझे सारे शहर का चहेता बना दिया. कुल मिला कर मजे थे कॉलेज में. मित्रों का चहेता, प्रवक्ताओं का दुलारा और प्राचार्य का

लाइला था. मात्र पांचवीं तक पढ़ी मां की मेहरबानी से 'राइटिंग' भी सुंदर थी. अध्यापक से लेकर खूबसूरत लड़कियां भी अतिरिक्त अंक दे दिया करती थीं.

कुल मिलाकर सबने मिलकर ऐसे हौसले दिये कि छोटे-छोटे पंख लेकर यह नन्हा कबूतर आसमान छूने का प्रयास करने लगा. राजगढ़ की नेवज नदी ने इस कदर तैरना सिखाया कि दुखों की बाढ़ और मुसीबतों की सुनामी भी ज़िंदगी भर मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकी. ये सारी यादें मैंने पोटली में बांध कर रख ली हैं. अरे हां, एक बात तो भूल ही गया. 'नवभारत' अखबार में उस समय 'फुल बगिया के फूल' नामक कॉलम निकलता था. उसकी सदस्यता के लिए मैंने आवेदन कर दिया. जब ढेर सारे बच्चों के बीच मेरा भी नाम छपा तो अखबार की उस कटिंग को कई दिनों तक मैंने सिरहाने के नीचे छिपा कर रखा. एक बार रात में मैं लाइट जला कर चुपके से अपना नाम पढ़ रहा था कि भाई साहब ने देख लिया. उन्होंने सोचा कि किसी लड़की का प्रेम पत्र पढ़ रहा हूं, आधी रात को ही डांटने लगे. मैंने छुपाई हुई कटिंग उनके हाथ में रख दी तो उनकी भी आंखें नम हो गयीं.

❖ **कुछ पारिवारिक संदर्भ, कुछ प्रणय, कुछ घर की बात -**

**'पांव पड़े ज्यों ही बसंत के  
टहनी लचक गयी,  
दिल की बात कली के मुंह पर  
आकर अटक गयी.**

कैसे मुलाकात हुई जीवन संगिनी श्रीमती नीता जी से? आपने अपनी दो पुस्तकें 'ये हवा से बोल देना' एवं 'चंदा! तेरे गांव' बेटे संकेत एवं पुत्रवधू पूजा तथा प्रिय बेटे सोनल एवं प्रियवर दामाद प्रभात रंजन को सस्नेह समर्पित की हैं. यह आत्मीयता प्रेरक है. पिता-पति-ससुर और अब दादा, नाना का दायित्व निर्वहन अब्दुत है जब कि निर्वाहक एक व्यस्त निजी संस्थान का अधिकारी, देश का प्रतिष्ठित गीतकार एवं एक सजग संपादक भी हो. जीवन के इतने सारे विभिन्न आयाम, दायित्व सब कैसे सहजता से कर पाते हैं? बतायें.

मधुजी, यह प्रश्न मुझे उलझाने वाला है. बरसों बाद किसी ने मेरी दुखती रग पर हाथ रख दिया है. जिसे उम्र भर छिपाया उसे उजागर करने का आपने आग्रह कर डाला.

घर-परिवार की बातें यूँ भी दुनिया से कही नहीं जातीं. किंतु आपसे कहने की हिम्मत कर पा रहा हूँ. हाँ, मेरा प्रणय वाला मामला बड़ा मुसीबत का मारा रहा. माता-पिता, दादी, छः भाई और तीन बहनें. पिताजी पटवारी यानी तृतीय श्रेणी शासकीय कर्मचारी. चूँकि वे बेईमान पटवारियों में से नहीं थे इसलिए उनके संकट ज्यादा थे. हाँ, गरीब किसानों की दुआएं साथ थीं और थोड़ी बहुत खेती-बाड़ी का सहारा था तो उसने हम सबकी पढ़ाई-लिखाई की नैया पार लगा दी. नौ भाई बहनों में मेरा छठा नंबर था. मेरी पढ़ाई पूरी भी नहीं हुई थी कि पिताजी रिटायर हो गये. मैं अर्ध शिक्षित बे-रोज़ी और बे-शादी रह गया. बस यही वह मोड़ था जहाँ से मेरा बचपन छिना, संघर्ष के दिन शुरू हुए, ऑट मुस्कानों को तरसे और आंखों ने उदासी ओढ़ ली. शादियों के बाद सामान्यतः घरों में बड़े भाइयों की नजर में भाभियां सगी और छोटे भाई सौतेले हो जाया करते हैं. मैं भी इस विडंबना से गुजरा. बहरहाल ठोकरें खाते-खाते ग्रेजुएट हुआ और कारखाने के लेखा विभाग में नौकरी पायी. चूँकि एक टीस थी मन में भाभियों का प्यार न पाने की. यह टीस मैं अपने दो छोटे भाइयों को नहीं देना चाहता था इसलिए नीता जी से शादी अपने छोटे भाई ओम की पसंद से की. वे छोटे भाई के साथ कॉलेज में राजगढ़ में ही पढ़ती थीं. इनकी समझदारी और गंभीरता देख कर ही ओम ने इन्हें भाभी बनाने का निर्णय लिया था. बड़े भाइयों ने विरोध क्या बहिष्कार किया. पिताजी साथ थे मगर आर्थिक रूप से असहाय. एक बार मंगनी टल गयी. बात भी टूटने की कगार पर आ गयी. अंततः मैंने कंपनी से ऋण लिया और दहेज रहित विवाह करने छोटे से गांव से बारात लेकर राजधानी (भोपाल) पहुंचा. इस तरह नीता जी के रूप में एक आदर्श गृहणी मेरे घर, मेरे जीवन में आयीं जो जीवन पर्यंत तक मेरे माता-पिता की लाडली बनी रहीं.

एक मधुर प्रसंग. प्रथम मिलन पर नीताजी को उपहार में देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं था. रस्म के दौरान जो मिला वही उनको दे पाया. लेकिन उस रात का वाक्या अविस्मरणीय है. गांव में कच्चा मकान था. दो कोठरियां लगी-लगी थीं जिसमें मां ने कुछ खाली पीपे और डलिया रख कर आड़ करने की कोशिश की थी. रस्में निभाते आधी रात हो गयी. जमकर भूख लग रही थी, दोनों को. तभी मैंने महसूस किया कि कमरे में खुशबू आ रही है.

जब मैं खुशबू सूंघता-सूंघता डलिया के पास गया तो देखा कि पूरी टोकरी आम से भरी हुई है. फिर क्या था? मजे आ गये. हम दोनों ने जी भर आम खाये. आम भी हमारे खेत के थे. छिलके और गुठलियों का ढेर कोने में लगा दिया. सुबह यह ढेर खूब चर्चा का विषय बना और दिन भर हंसी के फव्वारे फूटते रहे. बेचारी नीता जी शर्म के मारे कोने में छिपती रहीं. बहरहाल उन खट्टे-मीठे आमों ने जीवन भर के लिए हमारे रिश्ते में देसी आम की मिठास घोल दी. कच्ची कोठरी और आम की टोकरी हमेशा याद रहेगी. हाँ, आज दामाद बेटे की तरह, तो बहू बेटे की तरह. माता-पिता को और क्या चाहिए. मुझे कुछ अपेक्षाएं भी नहीं हैं. मेरी ज़रूरतें भी सीमित हैं.

❖ 'लहरों को ढूँढ़ते हुए?' 'बिजलियों को पांव में बांधकर', 'जब आपकी आंखें नैनीताल हुईं', तब 'झमाझम बारिश में', 'यादों के हरसूद' से आपने 'ये हवा से बोल देना' तब कहा जब 'चंदा तेरे गांव' उतरा. मगर यह कवि कब उतरा जीवन में, दर्शन में, चिंतन में क्योंकि -

*'सारी उमर टूट कर बिखरे*

*तब जाकर कुछ गीत लिखे हैं.'*

कैसे प्रारंभ हुई यह काव्य यात्रा - कवि एवं कविता के अनुभव बांटें.

*'खड़ा है द्वार पर ऋतुराज,*

*मन पागल हुआ जाता.'*

देखिए मधुजी, संवेदनशील मन तो सबके पास होता है किंतु अपनी भावनाओं को कविता में ढालने की कला सबके पास नहीं होती. गीत की दिशा परिस्थितियां तय करती हैं, आसपास का वातावरण तय करता है, मौसम का ठंडा-गरम मिजाज तय करता है. पढ़ाई से नौकरी तक का सफ़र अभावों और मुश्किलों में गुजारा तो गीत में पीड़ाएं थीं, आंसू थे, हताशा थी, लाचारी थी. उम्र से अधिक परिपक्वता थी. कविताओं का बचपन मर गया था. लेकिन ज्यों ही वेतन मिलने लगा, राजधानी की पढ़ी-लिखी बहू ने सिर पर घूंघट डाल कर गांव के कच्चे आंगन में प्रवेश किया तो गीत मुस्कुराने लगे, ग़ज़लें शरारत पर उतर आयीं. आंखें गीलेपन को तरसने लगीं. ऋतुराज द्वार के चक्कर लगाने लगा. फिर तो ज़िंदगी ने पीछे मुड़ कर देखा. गीतों की गागर जस की तस छलक रही है. आप जैसों का प्यार मिला तो गागर, सागर में तब्दील हो गयी है. लेकिन इस सागर में

खारापन कोसों-कोसों दूर.

❖ दिनेश जी, गीतों से मन प्राणों को संतृप्त करते-करते यह इच्छा कब जगी कि गीतों की गगरी को 'गीत गागर' के रूप में, एक पत्रिका का रूप प्रदान कर घाट-घाट से, लहर-लहर से गीत बटोरे जायें और रचनाकारों का एक परिवार एक अंतरंगता स्थापित की जाये. यानी अब अपनी संपादकीय कला के विषय में बतायें. संपादकीय दायित्व किस प्रकार निभा रहे हैं. क्या अनुभव हैं इस क्षेत्र के?

मंच पर जाते-जाते मैंने महसूस किया कि यहां जेबें तो भरती जाती हैं और कविता खाली होती जाती है. फूहड़ता बाज़ी मारती है और संवेदना हाथ मलती है. 'गीत गागर' के अस्तित्व में आने की जहां बात है, रिटायरमेंट के बाद कुछ करना तो था ही. नौकरी के पिंजरे से निकल कर दोबारा तो उसमें घुसने से रहा. समय काटना बड़ा संकट था. कवि सम्मेलनों के लिए जोड़-तोड़ करना मेरा स्वभाव नहीं. बल्कि इस प्रवृत्ति का मैं घोर विरोधी हूं.

मैंने महसूस किया कि अच्छे गीतकारों की बुजुर्ग पीढ़ी जहां खत्म हो रही है, वहीं अधिकांश वरिष्ठ व समृद्ध रचनाकारों की क्रीमती धरोहरें डायरियों के पन्नों में दम तोड़ रही हैं. आज की नयी पीढ़ी गीत को सिरदर्द समझती है. साधना कौन करे? हवाई जहाज से सीधे एवरेस्ट की चोटी पर उतरना चाहती है. मेरे मन में यह बात घर कर गयी कि प्रकृति भले ही गीत को जिंदा रखे लेकिन आज की लयहीन, रसहीन, छंदहीन, गंधहीन जमात गीत का गला घोटने पर उतारू है. ऐसा नहीं कि गीतकारों की बिरादरी में विभीषण भी हैं. बहरहाल पत्रिका की शुरुआत करके मैंने बुजुर्गों की पीली पड़ी डायरियों में सुनहरी रचनाएं खंगालना शुरू कर दिया है और नयी पीढ़ी को पोलियो की दो बूंद पिलानी भी हैं. देखता हूं कुछ बरस की उम्र में गीत की कितनी सेवा हो पाती है. आज 'गीत गागर' मुझे व्यस्त रखने का काम तो करती ही है, छंद के बिरवों की सिंचाई भी करती है. देशभर के रचनाकार बागबां बन कर इसकी हिफाजत करते हैं. आत्मीयता मेरे लहू में घुली है. मंच पर रह कर भी मैंने अंतरंगता स्थापित करने का कार्य किया. अपनेपन का सोच मेरे कर्मों में नहीं, मेरे संस्कारों में है. अब बात संपादन कला की. मधुजी, मेरे जिस संपादन को आप कला कह रही हैं, दरअसल वे खीची गयी आड़ी-तिरछी रेखाएं हैं. आपने

उनके भीतर कोई मॉडर्न आर्ट खोज निकाला है. फिर भी आपका आभार मानने को मेरा मन करता है. सच कहूं तो संपादक का कोई गुण मेरे भीतर नहीं है. लोग संपादक से अपेक्षा करते हैं कि वह पाठकों या रचनाकारों से नज़दीकियां नहीं बढ़ाये, संपादक का दबदबा बना रहे, कैची में धार करके रखे, पत्रिका जिंदा रखने के लिए व्यवसायी बने. मैं इन सारी खूबियों को अपनाने में असफल रहा. मेरी इन कमियों में यदि आप कुछ अच्छा ढूंढ़ रही हैं तो आपकी दृष्टि का आभारी हूं.

❖ दिनेशजी, आप गीत मंच के एक चर्चित कुशल संचालक एवं उद्घोषक हैं. विभिन्न गीत मंचों एवं जीवन मंच पर बीती सदी, नयी सदी और भावी सदी के रचनाकारों से मिलते रहे हैं. कौन-सा व्यक्तित्व या गीतकार या गीत आपके हृदय पर अपनी छाप छोड़ सका है या छोड़ रहा है. और यह भी कि विद्यार्थी जीवन में या वर्तमान में आपके प्रिय रचनाकार कौन रहे हैं?

ये चर्चित और 'कुशल' शब्द मुझे चिंता में डाल देते हैं. मुझे इनकी सुरक्षा करने की फ़िक्र सताने लगती है. ये उपमाएं और विशेषण बटोरने के लिए मैंने कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं किया, कोई प्रशिक्षण नहीं लिया. आवाज़ ईश्वर की दी हुई है, आचरण माता-पिता के दिये हुए हैं, विनम्रता बड़ों के चरणों में बैठने से मिली है. मैं फ़ैशन में नहीं, परंपरा में विश्वास रखता हूं. समय क्या कह रहा है मुझे इससे मतलब नहीं. सभ्यता क्या कह रही है मेरे लिए यह महत्वपूर्ण है. हां, ग़लत काम के विरोध में भी मैं कट्टरपन की सीमा तक जाता हूं. फिर चाहे परिणाम कुछ भी हो.

पहले जिन गीतकारों को सुनकर मन तृप्त होता था, गीत के प्रति श्रद्धा जगती थी, एक-एक कर दुनिया छोड़ चुके हैं. जन-जन का आशीष पाकर नीरज जी ज़रूर उम्र की बेहतरीन पारी खेल रहे हैं. वे तो गीत का पर्याय हैं ही. मेरे पसंदीदा भी. उनके आलोचक भी कम नहीं हैं. लेकिन इसमें ईर्ष्या अधिक है आकलन कम.

कवि सम्मेलन का मंच अब हताशा और निराशा का दृश्य ही उत्पन्न करता है. चूंकि इस मंच का सरस्वती से अब कोई लेना देना नहीं है, इसलिए इसके नाम परिवर्तन पर विचार होना चाहिए. वास्तव में जो बहुत अच्छे रचनाकार हैं वे परिदृश्य से ग़ायब हैं और अखाड़ेबाजों की कुशितयां ज़ारी हैं.

गीतकारों में मुझे कौन आकर्षित करता है तो मेरे ओठों पर सिर्फ एक नाम है — सहारनपुर की श्रीमती इंदिरा गौड़. उनके गीत गहराई से मुझे छूते हैं, उनकी सधी हुई मीठी स्वरलहरी मुझे जंगल में पहाड़ से गिरते झरने का आनंद देती है. बचपन में यदि मैथिली शरण गुप्त, रसखान और श्रीकृष्ण 'सरल' को न पढ़ता तो मैं भी पिताजी की तरह पटवारी बनकर खसरे और खतौनी के कार्यों में उलझा रहता.

❖ दिनेश जी, अब कुछ चर्चा गीत/नवगीत और दोहे, ग़ज़ल पर करें. क्या कहना चाहेंगे आज के गीत, नवगीत या हिंदी/उर्दू ग़ज़ल के बदलते संदर्भ, नये रूप रंग के विषय में? आपके गीत समसामयिक विषय एवं प्रसंग से जुड़े रहते हुए भी प्राकृतिक सौंदर्य पारिवारिक एवं राजनीतिक वैमनस्य, आधुनिकता, नैराश्य विषाद, कुंठा, प्रेम, वात्सल्य यानी सभी रंग, रस में भीगे हुए गीत की महिमा एवं गरिमा को बनाये रखते हैं. साथ ही आस्था, आशा, विश्वास और सकारात्मक सोच का भी संदेश देते हैं. बतायें —

*'भागता हूँ तेज में भी  
ये हवा से बोल देना.'*

पहली बात तो मैं यह साफ़ कर दूँ कि मुझे गीत का बंटवारा पसंद नहीं. उसे अलग नाम देना, अलग-अलग खानों में बांटना मेरी समझ से बाहर है. मैं इस बात की चिंता नहीं करता कि कोई बात से सहमत होता है या नहीं. ग़ज़ल के बारे में भी मेरा यही मत है. गीत कल था तो कल की बात करता था आज है तो आज की बात करेगा. वर्तमान में इसे नव-गीत कहेंगे तो कुछ बरस बाद क्या यह पुराना नहीं होगा? फिर उसे क्या नाम देंगे? 'नव' शब्द की कोई सीमा तो होगी. अरे भाई! आप नये प्रतीक लाइए, नये बिंब लाइए, नये तरीके से बात कीजिए, छोटे-छोटे छंदों में बात कीजिए. आपको किसने रोका है? नया नाम देकर ही नयी बात कहेंगे क्या? कोई भी चीज़ सदा के लिए 'नव' नहीं रहती. नये नाम नहीं, नये विषय लाइए, नया कथ्य लाइए, नया शिल्प, नयी सोच लाइए — किसको आपत्ति है? गीत को नाम के नये-नये आवरण पहनाना उसके अस्तित्व के लिए संकट पैदा करना है. ग़ज़ल में भी यही बात है. जो, हिंदी भाषी हैं स्वाभाविक हैं हिंदी का प्रयोग अधिक होगा. जो उर्दू भाषी हैं तय है वे अपनी भाषा या शब्दों से ग़ज़ल

सजायेंगे. ग़ज़ल के 'फॉरमेट' से भाषा का क्या रिश्ता? ज्यादा ही नयेपन का शौक है तो नयी विधा तैयार कीजिए. स्थापित और मान्य विधा को तहस-नहस कर अराजकता की स्थिति क्यों पैदा करते हैं. कुछ सिरफिरे कहते हैं — नयी कविता से लड़ने के लिए नवगीत अवतरित किया गया. नयी कविता को तो आम पाठक या आम श्रोता नकार चुका है. क्या नवगीत को भी आप इस स्थिति में देखना पसंद करेंगे.

मधुजी, मेरे गीतों में आप बहुत कुछ सकारात्मक पाती हैं तो मेरा दृढ़ विश्वास ही इनकी जड़ों में है. यह सच है कि गीत दर्द की उर्वरा भूमि से पैदा होते हैं. लेकिन गीत की शर्त यह नहीं है कि वह दर्द ही उगले, दर्द ही परोसे. जीवन में सुख भी आते हैं, खुशनुमा मौसम भी आते हैं, मन-भावन ऋतुएं भी आती हैं. क्या गीत के विषय में सब नहीं हो सकते? गीत भले ही दर्द से उपजे मगर उसे ऊर्जा प्रदान करने वाला संबल प्रदान करने, टूटने-बिखरने से बचाने वाला होना चाहिए. गीत केवल रोने-धोने का नाम नहीं है. गीत पीड़ा से मुक्ति का उपक्रम है. मैं गीत को शक्तिवर्धक औषधि मानता हूँ. अगर हमें मुसीबतों को हराना है, समय की चुनौतियों से निपटना है तो गीत का ग्लूकोज़ गटकना होगा, छंद और लय का च्यवनप्राश लेना होगा. गीत के माध्यम से अपने आंसू भी पाठकों और श्रोताओं की झोली में मत डालिए. दुनिया में वैसे भी क्या दुखों की कमी है?

❖ दिनेश जी, आत्मीयता, उन्मुक्त हास्य, शालीनता एवं सहजता सब कुछ आपके व्यक्तित्व में अनायास ही है. कोई जतन करके धारण किया गया गुण नहीं है. शायद जैसे फूलों में सुगंध या लोरी में ममत्व प्राकृतिक रूप से होता है. जीवन में लोग बहुत कुछ पा जाते हैं किंतु इस पाने की दौड़ में क्या-क्या गंवाते जाते हैं इसका न तो उन्हें अहसास होता है और न ही इस अहसास के बाद कोई प्रतिक्रिया होती है. आपका स्नेहपूर्ण व्यक्तित्व इस बात का द्योतक है कि उपलब्धियां आपके हृदय तक रही हैं. मस्तिष्क तक पहुंच कर 'ईगो केंद्र' नहीं बनी हैं. नूतन पीढ़ी को ऐसी सरलता बनाये रखने के लिए क्या संदेश देना चाहेंगे?

आपने बहुत सी खूबियां ढूंढ़ निकाली हैं मेरे भीतर. सच कहूँ, कुछ भी उपलब्धियां नहीं हैं मेरी झोली में. मैं दर्शक दीर्घा में बैठने वाला सबके बीच आनंदित होने वाला व्यक्ति

हूँ. बड़े परिवार में रहा हूँ तो आदत हो गयी है भीड़ में रहने की, सबसे हंसते बतियाने की. जो मुझे समझ नहीं पाते वे मेरी आलोचना करके सुख पा लेते हैं. इस उम्र में लोग इस बात को लेकर कुंठाग्रस्त होते हैं कि उन्हें कोई समारोह का अध्यक्ष क्यों नहीं बनाता, मुख्य अतिथि क्यों नहीं चुनता. कार्यक्रम के बारे में कोई राय मशवरा क्यों नहीं लेता? मेरे लिए ये सारी चीजें मायने नहीं रखतीं. बड़े सिर पर हाथ रखते हैं, साथी लिपटते हैं, छोटे झूम जाते हैं — क्या ये मेरे लिए कम है? 'ईगो' का जहां तक सवाल है वह बचपन में ही मेरे जीवन से तिरोहित हो चुकी है. विद्यार्थी जीवन में मैंने अपने गांव की मशहूर रामलीला में दो बरस सीता का, तीन बरस लक्ष्मण का और पांच बरस राम का रोल अदा किया. बहुत करीब से रावण का अहंकार देखा और उसकी परिणति भी. सबको बचना चाहिए इससे. जो बड़े रचनाकार अभिमानी हैं वे कुंठाओं में जीने व एकाकीपन भोगने के लिए अभिशप्त हैं. नये रचनाकार जिनके भीतर दो कविताएं लिखने के बाद इस कैसर ने जन्म ले लिया है, उनका डॉक्टर नहीं, भगवान रक्षक है. नूतन पीढ़ी के सामने मेहनत व विनम्रता के अलावा कोई रास्ता नहीं है. नर्म की बजाय यदि वे अधिक गर्म होंगे तो 'लू' का शिकार हो जायेंगे और उनका गंतव्य तक पहुंचना संदिग्ध हो जायेगा.

❖ चलते-चलते. आप एक कर्मठ, विचारशील, संवेदनशील रचनाकर्मी और प्रबुद्ध संपादक हैं. गीत, ग़ज़ल, दोहे, मुक्तक आदि आपकी अभिव्यक्ति का सार्थक माध्यम हैं. क्या लिख रहे हैं आजकल और क्या आप संतुष्टि का अनुभव करते हैं कि आप अपनी यात्रा के उस पड़ाव तक पहुंच गये हैं जहां तक का टिकट लिया है या फिर आपके ही शब्दों में –

**'समझ न आता कर ली हमने  
कहां पहुंचने की तैयारी?'**

छंद की जंजीर में जकड़ा हूँ. निकलने का मन ही नहीं करता. पिछली बार दो गीत संग्रह एक साथ आये थे. फिलहाल चार ग़ज़ल संग्रहों की सामग्री तैयार है लेकिन 'गीत गागर' की व्यस्तता ने रास्ता रोक रखा है. 'प्याऊ' खोल कर बैठा हूँ तो भीड़ की प्यास तो बुझानी हो होगी. लाइन कम होगी तो दो घूंट अपने हलक में भी उतारने की कोशिश करूंगा. हंसिएगा मत, साठ की उम्र के बाद जल्दी ही ग़ज़ल संग्रह 'मौसम शरारती है' आपको सौंपने वाला हूँ.

हां, शिकायत किससे और कैसी? ज़िंदगी से? शिकायत मुझे ज़िंदगी से कभी नहीं रही. न वक्रत से, न मौसम से. सब अपना काम कर रहे हैं मैं भी. मैं सोता हूँ तो वे आगे निकल जाते हैं. वे सोते हैं तो मैं. आंख मिचौली और सांप-सीढ़ी का खेल जारी है. दोनों में कड़ा मुकाबला है. हारेंगे तो भी पीठ तो ठोकी ही जायेगी. मधुजी, आपका टिकट वाला प्रश्न बड़ा रोचक है. मैं ट्रेन में बैठा ज़रूर हूँ लेकिन किसी मंजिल पर पहुंचने के लिए नहीं. बल्कि, सिर्फ घूमने और प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद लेने के लिए. साहित्य में मंजिल कहां होती है?

❖ दिनेशजी नयी पीढ़ी के नाम कोई संदेश, कोई संकेत – प्रमाणपत्रों, पारितोषिक और महिमा मंडित होने की दौड़, होड़ और जोड़-तोड़ – क्या नयी पीढ़ी भावी पीढ़ी को कुछ सौंप सकेगी? क्या करना होगा साहित्य की थाती को, विरासत को अगली पीढ़ी तक संप्रेषित करने, सुरक्षित रखने और ऊर्जायित (आपकी तरह) रहने के लिए.

नयी पीढ़ी के लिए मैं पूर्व में भी बहुत कुछ कह चुका हूँ. नया-नया सृजन प्रारंभ में भले ही स्वांतः सुखाय हो लेकिन अंततः वह समाज कल्याण के लिए ही होता है. प्रमाणपत्र बटोरने और महिमा मंडित होने से उसका कोई सरोकार नहीं. यह कोई प्रतियोगिता नहीं है जिसमें तमगे के लिए भाग लिया जाता है. नयी पीढ़ी का उद्देश्य क्या है, उसे तय करना पड़ेगा. आजकल सम्मान यूँ भी परिहास के पर्याय बन चुके हैं. पता पड़ा कि पुस्तक एक भी नहीं, घर में प्रमाणपत्र ढेरों लटके हैं. ऐसे सम्मान पाकर आप संतुष्ट भले ही हों लें लेकिन प्रबुद्ध समाज आपके क्रद व अहर्ता को अच्छी तरह समझता है. छोटे-छोटे घरों में वैसे ही जगह नहीं होती. झूठी प्रशस्तियों की बजाय यदि पूर्वजों की तस्वीरें दीवारों पर टांगे तो वे मरने के बाद भी आप पर गर्व करेंगे. याद रखिए, आपके नहीं रहने पर आपकी संतानें आपके सारे प्रमाणपत्र, स्मृति चिन्ह आदि रद्दी के ठेले वाले को बेच देंगे और कमरा किराए से उठा देंगे. वैसे भी आज की अंतर्मुखी सदी में कौन किसके घर आता-जाता है, ऐसे में आपके सम्मान को कौन देखेगा-पढ़ेगा? इसलिए सिर्फ और सिर्फ कविताएं लिखिए. खुद को खुश रखिए और दूसरों की ज़िंदगी में रस घोलिए. यदि गीतों की गागर

**(शेष पृष्ठ ४९ पर देखें)**



## कला फ़िल्मों का मसीहा : श्याम बेनेगल

✍ सविता बजाज

**नि**यति का सूत्रधार हमारे लिए पहले से ही भूमिकाएं निश्चित कर देता है और हम उन्हें खेलने को विवश होते हैं। अभिलाषा की दौड़ में न सोचने का समय रहता है और न आकलन की क्षमता और वर्तमान को तो सही तौर पर नापा नहीं जा सकता।

मुझे कला के क्षेत्र में आने के लिए बहुत बग़ावत करनी पड़ी और इसके लिए मेरा पूरा जीवन कला में ही ख़त्म हो गया। अपने आपको कला के विभिन्न पहलुओं में झोंक दिया। काफ़ी पुरानी बातें हैं, मेरी जवानी के दिनों की। जब ईश्वर मुझे पर बहुत मेहरबान था। जिस चीज़ को छूती सोना बन जाता। कला के सारे क्राफ़्ट मेरी रुह में रच बस गये थे, लगातार बरसों से जीवन में यही सब चल रहा था। किसी दूसरी दुनिया की बातें लगती थीं।

गाना, लेखन, रेडियो, डान्स, अभिनय वगैरह। जो भी मेरा काम देखता तो बस मेरा दिवाना हो जाता और मुझे प्रोग्रामों में लेने की होड़ लग जाती। मैं जवान थी, सुंदर थी, ईश्वर ने अपार क्षमता मुझे प्रदान की थी जिसे मैं कभी पहचान ही न पायी। ठीक हिरण की तरह, सुगंध अंदर। लेकिन इधर-उधर सुगंध के लिए भटकना। मैं सीधी-साधी सरल प्रकृति और ईमानदारी की धनी, संसार के छल-कपट से दूर सफलता की सीढ़ियां चढ़ती जा रही थी। मैं एन. एस. डी. दिल्ली की बात कर रही हूँ। वहां आये दिन बड़े-बड़े लोग आते थे हमारे नाटक देखने। दिल्ली में मेरे काम की धूम थी और एन. एस. डी. पास करने के बाद तो काम का बोझ बढ़ने लगा। आये दिन बंबई से भी काम के बुलावे आते। कभी फ़िल्मों में रोल, डॉक्यूमेंट्री या डबिंग, एडस का काम। दिल्ली, बंबई की दूरी कम होने लगी। मुझे काम मेरी क्षमता के बल पर अपने आप मिल रहा था। डायरेक्टर मणी कौल की फ़िल्म 'उसकी रोटी' जो एक आर्ट फ़िल्म थी, में मैं सहनायिका थी। बंबई में जगह-जगह बैनर लगे थे जिसमें मेरे बड़े-बड़े फ़ोटो छपे थे। 'आनंद' में मेरे साथ सुपर स्टार राजेश खन्ना था। कुछ फ़िल्में बतौर हीरोइन भी मिलीं लेकिन मैं तब बंबई को अपना आशियाना नहीं बनाना चाहती थी।

लिहाजा, सब छोड़-छाड़ कर दिल्ली लौट गयी और रंगमंच से जुड़ गयी। मैं बंबई का पानी पी चुकी थी और नियति क्या थी कौन जाने! विधि को तो कुछ और ही मंजूर था। कहते हैं न, होता वही है जो मंजूर खुदा होता है।

बंबई से काम के

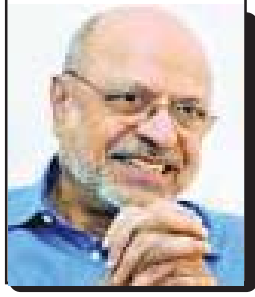
बुलावों का आना कभी बंद न हुआ और मैं न चाहकर भी यहां आ जाती। कला के प्रति दीवानगी मुझे दिल्ली में भी चैन न लेने देती, मेरी रुह भटकती रहती। कहीं चैन मिलता तो बस अच्छा पात्र निभाकर या कुछ अच्छा रेडियो प्रोग्राम करके या अच्छा लेखन करके। सच्चाई यह थी कि मेरी रुह को सिर्फ बंबई में सुकून मिलता था क्योंकि यहां कोई बंधन नहीं था, हर तरह की आज़ादी थी जीने की।

वरली के एक स्टूडियो में काम करने पहुंची तो एक आवाज़ कानों से टकरायी — अरी पगली सविता, यहां क्या कर रही हो। जाओ श्याम बेनेगल से मिल लो। एक रोल है उनकी फ़िल्म में तुम्हारे लिए। वह आवाज़ वनराज भाटिया साहब की थी। म्यूज़िक डायरेक्टर जो कभी एन. एस. डी. के मेरे ड्रामों में संगीत देते थे और मैं वनराज भाटिया के संगीत की दीवानी थी, उनके साथ गाती भी थी। मैं श्याम बेनेगल के दफ़्तर में पहुंची तो वहां नेशनल अवार्ड विनर साधू मेहर मुझे देखते बोला — आओ सविता, श्याम अभी थोड़ी देर में आ जायेंगे।

श्याम बेनेगल, एक बुद्धिजीवी, 'अंकुर' फ़िल्म के मशहूर डायरेक्टर मेरे सामने खड़े थे। श्याम मुझे पलभर देखते रहे फिर बोले — मेरी फ़िल्म 'निशांत' में काम करोगी। मैं हंस दी कुछ याद करके, मणी कौल ने भी दिल्ली में एन. एस. डी. की कैंटीन में मुझसे कुछ ऐसे ही पूछा था। श्याम बोले — हंसी क्यों? कुछ याद आ गया था सर, ख़ैर! सर, रोल क्या है? श्याम साहब ने रोल सुनाया।







**श्याम बेनेगल**

१४ दिसंबर १९३४;

एम. ए. (अर्थशास्त्र, उस्मानिया वि. वि., हैदराबाद).

एम. ए. करने के बाद आपने हैदराबाद फ़िल्म सोसायटी गठित की. १२ वर्ष की आयु में ही फ़िल्म फ़ोटोग्राफर पिता श्रीधर जी द्वारा दिये कैमरे से पहली फ़िल्म बनायी.

निर्देशक और स्क्रिप्ट लेखक के रूप में अंकुर (१९७३), निशांत (१९७५), मंथन (१९७६) और भूमिका (१९७९) बनाकर आपने हिंदी चलचित्र को एक नयी दिशा दी. १९७६ में आपको पद्मश्री व १९९१ में पद्म भूषण से अलंकृत किया गया. फ़िल्म व टेलीविज़न संस्थान, पुणे के अध्यक्ष के पद को भी आपने दो बार सुशोभित किया (१९८०-८३ व १९८९-९२).

: संपर्क :

सह्याद्री फिल्म्स,

ए-१९/२०, पहला माला, एवरेस्ट,

ताड़देव, मुंबई-४०००३४.

फ़ोन : २४९५९९७७

नौकरानी का रोल था हैदराबादी पोचम्मा का. सर, मैं तो कल दिल्ली वापस जा रही हूँ. टिकट भी है. मेरे पास राजधानी ट्रेन का. श्याम बोले — “टिकट कैसल कर दो और घर फ़ोन कर दो कि आप हमारे साथ परसों हैदराबाद जा रही हैं. फ़िल्म ‘निशांत’ के लिए.” वह गुरुदत्त के भाई देवीदत्त से मुखातिब हुए — सविता का कान्ट्रैक्ट बना दो और कुछ रुपये अडवांस दे दो.

मैं हैरान, परेशान थी यह सोचकर फ़िल्मों में क्या ऐसे आसानी से काम मिलता है. लोग तो फ़िल्म इंडस्ट्री को बहुत बुरा कहते हैं.

‘निशांत’ फ़िल्म मेरे लिए वरदान साबित हुई. फ़िल्म में अपने-अपने क्षेत्र के नामी लोग थे और मैं बनी हैदराबादी

‘पोचम्मा’ जो आज तक ढलती उम्र में भी इस नाम के साथ जी रही है. ‘निशांत’ ने सफलता के ख़ूब झंडे गाड़े, कलाकारों को पहचान मिली. बंबई में बड़े-बड़े बैनरों पर पूरी कास्ट का नाम था सिवाय मेरे, जो एक दर्दनाक बात थी मेरे लिए. फ़िल्म का प्रीमियर मेट्रो सिनेमा में हुआ जहां पोचम्मा नदारद थी. लेकिन हाल में दर्शक पोचम्मा, पोचम्मा चिल्ला रहे थे. स्मिता पाटील जो मेरी पक्की सहेली थी, सब सच्चाई जानती थी. श्याम से इस बाबत बात की तो बोले — आपका नाम ज़्यादा मशहूर नहीं है न.

मैं ‘निशांत’ के बाद फ़िल्म इंडस्ट्री की अंदर की राजनीति समझ चुकी थी. हर जगह पोचम्मा की धूम थी. लोग मेरे बारे में पचासों मैगज़ीन्स में लिखते, फ़ोटो छापते, वीकली में खुशवंत सिंह जी जो संपादक थे मुझे खुद बुलाकर मेरे बारे में चार पृष्ठ पर ढेर सारी फ़ोटोज़ के साथ लिखा.

धर्मयुग, माधुरी, फ़िल्म फेयर, स्टार एंड स्टाइल, स्क्रीन शायद ही कोई पत्रिका हो जिसमें मैं न छपी थी. हर जगह मेरे काम की तारीफ़. बहुत सोचा और इस नतीजे पर पहुंची, नाम में क्या रखा है, काम बोलता है सविता जी. बस अपने आपको पूरी तरह नये-नये किरदारों में ढालती गयी. ‘मंथन’ में बीड़ी वाली महिला कहलाई और ‘जनून’ में बेनाम थी. श्याम बाबू फ़िल्में बनाते रहे और मैं मेहनत करती रही. ‘कलयुग’ फ़िल्म के आने तक मुझमें बहुत हिम्मत आ चुकी थी मेड सर्वेंट के पात्र को ‘न’ कहने की. मैं श्याम की फ़िल्मों में छोटे-छोटे नौकरानी के पात्र करके ऊब चुकी थी. लिहाज़ा श्याम बाबू के साथ एक अध्याय समाप्त हो गया. न मैंने काम मांगने की हिम्मत की और न ही बुलावा आया.

वक्रत अपनी रफ़्तार से भाग रहा था और श्याम बाबू नये-नये लोगों के साथ फ़िल्में बना रहे थे. अवार्डों से इनकी झोली हमेशा की तरह भरती जा रही थी. बरसों बाद जब ‘भारत एक खोज’ का बुलावा आया तो मैं ‘न’ नहीं कह सकी. श्याम बेनेगल सही मायने में आर्ट फ़िल्मों के मसीहा हैं, भाग्य विधाता हैं. जिन दिनों ‘निशांत’ बनी, आर्ट फ़िल्मों का ही चलन था. फ़िल्म मेकर छोटी-छोटी फ़िल्में बनाकर अवार्ड जीतकर कॉमर्शियल फ़िल्में बनाकर नाम और धन कमाना चाहते थे और ज़्यादातर निर्माताओं ने ऐसा ही किया. लेकिन श्याम बाबू ने ऐसा नहीं किया. फ़िल्में

बनाने से पहले खूब पढ़-लिखकर कला के पचासों क्षेत्रों से जुड़े थे, ढेरों इनाम जीत चुके थे और वह सिलसिला अभी तक नहीं थमा।

आज जब मैं इनकी कोई पुरानी फ़िल्म देखती हूँ या इनके बारे में सोचती हूँ तो लगता है इस व्यक्ति ने जीते जी कोई इतिहास रच दिया। मैंने अपने जीते जी श्याम बाबू के साथ कितना काम किया कि लोग मुझे आर्ट फ़िल्मों की चरित्र अभिनेत्री के नाम से जानने लगे। शायद कोई सुनहरा सपना देखते-देखते बूढ़ी हो गयी। समय इतनी जल्दी बीत गया कि कहीं कोई आहट ही नहीं हुई। इनकी खोज के कई बड़े चेहरे भगवान को प्यारे हो गये। जैसे अमरीश पुरी, सत्यदेव दूबे, स्मिता पाटील, वनराज भाटिया, इस्मत चुगताई, जैनीफ़र कपूर, और बाक्री नाम धन, यश, कमाकर अपनी अपनी दुनिया में मशरूफ़ हैं। जो नाम और धन नहीं कमा सके, हाथ पर हाथ धरे किसी दूसरे श्याम बेनेगल की तलाश में जुटे हैं।

श्याम बेनेगल अपनी ढलती उम्र में भी खूब सक्रिय हैं। कर्मभूमि में बिज़ी हैं। कभी किसी बड़े फ़िल्म महोत्सव में अतिथि, कभी जज बनते हैं, कभी समारोह का उद्घाटन करते हैं। कभी किसी पुस्तक मेले का रिबन काटते हैं या पुस्तक विमोचन प्रोग्राम में शरीक होते हैं। देश-विदेश में लैक्चर देने भी जाते हैं और फ़िल्में भी बनाते हैं। अवाडॉ का सिलसिला भी अभी तक नहीं थमा। जिस मिट्टी को हाथ लगा दें, सोना बन जाये। कई बार मैं सोचती हूँ कि श्याम बेनेगल जिनका देश-विदेश में खूब नाम है, सुविख्यात हैं, लीक से हटकर अच्छे स्तर की फ़िल्में बनाते हैं भले ही लोग इनकी फ़िल्मों को आर्ट फ़िल्में कहें क्योंकि आर्ट के बिना तो जीवन ही संभव नहीं तो फ़िल्म का बनना कैसे संभव होगा। क्यों इनकी फ़िल्मों का एक बड़ा महोत्सव नहीं मनाया जाता। क्यों इनके चहेते कलाकार जो आज इस काबिल हैं कि ऐसा करें। क्यों नहीं करते? क्यों लोग अपने भाग्य विधाता को भूल जाते हैं। मेरे लिए तो श्याम बेनेगल मसीहा बनकर आये जिन्होंने 'निशांत' फ़िल्म की पोचम्मा को अपने चाहने वाले दर्शकों तक पहुंचाया और जो आज अपनी ढलती उम्र तक दर्शकों और पाठकों के दिलो-दिमाग में बसी है। ऐसे महान निर्माता, निर्देशक को मेरी चरण वंदना। शत् शत् नमन।

- सविता बजाज

पो. बॉक्स १९७४३, जयराज नगर,  
बोरीवली (प.), मुंबई-४०००९१.

## सागर-सीपी...

छलकेगी, तन-मन भीगेगा तो भरी दुपहरी में सुकून मिलेगा।

मधुजी, आपके बेबाक प्रश्नों ने मेरी भावनाओं को वाणी ही नहीं दी मेरे सृजन को बल व पंख भी दिये हैं। आपसे बातचीत करके मैं फिर से ऊर्जावान महसूस कर रहा हूँ। आपका हृदय से शुक्रिया, धन्यवाद आभार!

❖ आपसे बात करके मन को परम आनंद मिला।

आपकी ऊर्जा एवं सृजनशीलता सदैव प्रवहमान रहे और नित्य नये प्रतिमान स्थापित करती रहे। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ आपकी ही इन पंक्तियों के साथ विदा ले रही हूँ -

'एक हिमालय हूँ तब ही तो  
धीरे-धीरे पिघल रहा हूँ,  
जितनी मांज रही है पीड़ा  
उजला-उजला निकल रहा हूँ.  
जितना अनुभव मिला उम्र से  
उतनी चांदी है बालों में,  
गीतकार का स्वर है मेरा  
क़ैद नहीं होगा तालों में.'

- डॉ. मधु प्रसाद

❖ २९, गोकुल धाम सो., कलोल-  
महसाणा हाइवे चांद खेड़ा,  
अहमदाबाद-३८२४२४.  
मो. : ९५५८४२४७८८

## पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें। मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें। आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी। पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें।

- संपादक



## संभावनाओं को मुखरित करती कहानियां

✍ डॉ. निरूपमा राय

**हमसफ़र** (कहानी संग्रह) : नीतू सुदीप्ति 'नित्या'

**प्रकाशक** : बोधि प्रकाशन, करतारपुरा इंड. एरिया,  
जयपुर-३०२००६. मू. १००/- रु.

'हमसफ़र' संभावना युक्त लेखिका नीतू सुदीप्ति 'नित्या' का प्रथम कहानी संग्रह है. देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में नीतू 'भोजपुरी' एवं हिंदी भाषा में निरंतर लिख रही हैं. इस संग्रह की लगभग सभी कहानियों में एक सहजता है... सरल भावों में जीवन से जुड़ी विडंबनाओं का चित्रण है. जीवन के कटु यथार्थ संग्रह की कहानियों में स्पष्ट प्रतिबिंबित होते हुए दिखते हैं. नीतू की कहानियों में स्त्री विमर्श, मातृ-संवेदना, जीवन संघर्ष, समाज, परिवेश, नियति, विडंबनाएं, रिश्तों की मार्मिकता, आध्यात्मिक परिवेश का चित्रण सब कुछ है.

पहली कहानी 'मातृरूपेण' जहां भ्रूणहत्या का जोरदार विरोध करती है वहीं अगली कहानी 'अगले साल' का दर्द गहरे तक मन को स्पर्श करता है. भूख और गरीबी का दंश झेलती लीला का दर्द मन को छू जाता है. 'नयी जिंदगी' की अनु जहां जीवन को एक नयी दृष्टि से देखती परखती है वहीं 'सरोकार अपने-अपने' की अलका भी एक अनकही वेदना की साक्षी है. 'आजकल' कहानी वर्तमान समय की समस्याओं से जुझती हल भी प्रदान करती है. कविता और माही का दर्द, 'आजकल क्या हो गया है हमारी इस युवा पीढ़ी को? कुछ सोच-विचार नहीं और झट से... कहीं न कहीं हम भी तो दोषी हैं जो अपनी बेटियों के साथ खुलकर बात नहीं करते और समस्या खड़ी हो जाने पर समाधान ढूंढते हैं,' इन पंक्तियों में स्पष्ट है. कहानी 'लड्डूचोर' और 'दुनिया की रीत' में वृद्ध विमर्श की बात सूक्ष्मता से कही गयी है. बुढ़ापे की लाचारी और हृदयगत पीड़ा उभरकर सामने आती है. बूढ़े मां-बाप अपने ही घर में लड्डू चुराकर खाने पर विवश हैं तो बूढ़ी मां को जीवनपर्यंत खुशी नहीं

मिलती पर मृत्यु के बाद उसके निमित्त भोज का आयोजन किया जाता है. यह आज भी हमारे समाज का विद्रूप सत्य है. कहानी का अंत सकारात्मक है यह अच्छा लगा. इस संग्रह की सबसे अच्छी है शीर्षक कहानी — 'हमसफ़र'. इस प्रेमकथा में प्रेम की पराकाष्ठा के साथ-साथ बिहार के महान लोकपर्व 'छठ' का भी सुंदर चित्रण है. जो इस कहानी की एक अन्य विशेषता है. पियूष और साल्या के जीवन के उतार-चढ़ाव का चित्रण मर्मस्पर्शी है. साथ ही कहानी में बुचिया, बबी, अलता, ठेकुआ, कमासुत (कमानेवाली), छेकना, दउरा (डाली), ईख, अएपन (रंगोली), अरग (अध्र), भूंजा, बो (बहु), प्रसादी, कचवनिया (यानी चावल के आटे का लड्डू), बबुआ इत्यादि देसी शब्द लोकभाषा के शब्द कहानी को खूबसूरती प्रदान कर पठनीय बनाते हैं. साथ ही इस कहानी में स्त्री के पावन प्रेम की वो अकथनीय कथा है जिसे आज भी कोई ठीक से समझ नहीं पाया है. 'त्याग' सच्चा प्रेम और सहानुभूति स्त्री के नैसर्गिक गुण हैं जिन्हें पुरुष छू भी नहीं पाता. 'छठ पर्व' का चारु-चित्रण और छठ गीतों के वर्णन के कारण कहानी स्मरणीय हो गयी है जैसे — 'कांच के बांस के बहंगिया बहंगी लचकत जाये' यह गीत पठन मात्र से इस लोक पर्व की छवि दृष्टि में क़ैद कर जाता है. नीतू की कथा-लेखन संभावना की स्पष्ट आभा इस कहानी में है.

संग्रह की अन्य कहानियां थोड़ी कमजोर ज़रूर हैं पर अनुभव और प्रयास का फल अवश्य देंगी. एक कहानी है 'तीसरी मां' जिसमें यशोदा, मालती और दुर्गेश्वरी जैसी स्त्री पात्र हैं जो 'कल्याणी' के जीवन का मूलस्तंभ हैं. मां ही गुरु, मित्र और मार्गदर्शक हो सकती है यह सच सामने आता है. स्त्री एवं उसकी कठिनाइयों का बिंब-प्रतिबिंब नीतू की कहानियों में है. नीतू का यह प्रथम कहानी संग्रह उम्मीद जगाता है कि वह भले ही कठिन बीमारी से जुझ रही है, उसके अंतर्मन में सोच और आशा का झरना निरंतर बह रहा है. ईश्वर उसे सकारात्मक सोच एवं अच्छा स्वास्थ्य प्रदान करे इस शुभकामना के साथ नीतू सुदीप्ति 'नित्या' को

‘हमसफर’ के लिए हार्दिक बधाई. उनके और संग्रह भविष्य में देखने-पढ़ने को मिले इस मंगलकामना के साथ.

❧ **उर्सलाइन कॉन्वेंट रोड, रंगभूमि हाता,  
पूर्णमा-८५४३०१ (बिहार).**

मो. : ८४०९१०२१७९/९४३०९२७४१८.

## संवेदना के रंगों में चित्रित लघुकथाएं

❧ **डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय**

**ट्वीट (लघुकथा संग्रह) : डॉ. सतीश दुबे**

**प्रकाशन :** अमृत बुक्स, गुरु तेगबहादुर कॉलोनी,

कैथल-१३२०२७. **मूल्य :** ३००/-

**सं**प्रति औद्योगिक, वैज्ञानिक एवं कंप्यूटराइज्ड प्रगति के परिणामस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति प्रतियोगितावादी संस्कृति से प्रभावित है जिसके कारण वह समयाभाव महसूस करता है. वह तनाव से त्रस्त और ग्रस्त साहित्याभिरुचि को उपन्यास या कहानी में न विकसित कर लघुकथा में विकसित करना चाहता है ताकि उसको अल्पावकाश में भी रसानुभूति और सौंदर्यानुभूति हो सके. लघुकथा लेखन का मुख्य उद्देश्य समाज को कर्तव्य-कर्म और उत्तरदायित्व बोध के प्रति जागरूक करना है, संवेदनशील बनाना है तथा मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में जीवनादर्श स्थापित करना है. यही कारण है कि संक्षिप्तता, लघुता तथा वाकपटुता के धरातल पर लघुकथाकार सांकेतिक शब्दावली में कम से कम शब्दों में अधिकतम भावाभिव्यक्ति की क्षमता-दक्षता प्रदर्शित करता है. पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई कि सतीश दुबे के रचनाकार ने इस तथ्य और कथ्य को अपनी कृति ‘ट्वीट’ के माध्यम से प्रमाणित करने का भरसक प्रयास किया है.

समीक्ष्य कृति तिरासी लघुकथाओं का संग्रह है जिसमें रचनाकार ने समय की द्वंद्वत्मक स्थिति को मद्देनजर रखते हुए नवीनतम कथ्य, भाषा-शिल्प, प्रभान्वित की लीक पर नव्यता में भव्यता देखने का प्रयास किया है ताकि पाठकीय स्पंदन में उसकी सहभागिता हो सके. परंपरा तथा आधुनिकता बोध के द्वंद्वत्मक कैनवास पर संवेदना के रंगों से रंगी गयी ये लघुकथाएं निश्चय ही पाठकों के हृदय को स्पंदित करने में सक्षम सिद्ध हुई हैं. वर्ण्य-विषय की वैविध्यता, सामाजिक सरोकारों की प्रतिबद्धता एवं पाठकीय संवाद प्रवीणता ने

‘ट्वीट’ की रचनाओं को समकालीनता की जीवंतता प्रदान की है. ‘ममी-परिवार’ से लघुकथा संग्रह का शुभारंभ हुआ है जिसमें मां ममत्व की ऊर्जा के बिना हम सब निष्क्रिय और निर्जीव हैं — निश्चय ही मां की महत्ता, उपादेयता एवं परिवार की सार्थकता का घोटन करता है. ‘आहट’ मृत्यु का संकेत और वाचक है जबकि ‘हूक’ में दादाजी जैसे बुजुर्ग का परिवार के साथ न होना वेदना का कारण बना है. ‘प्रस्ताव का अंत’ झगड़ालू जीवन का संकेत देता है जिसमें मानव कुत्ते-बिल्ली सा जीवन व्यतीत करता है. मूल्यांकन में ‘औरत’ औरत होती है न उसकी कोई जाति या नाम होता है को पारिभाषित किया गया है. ‘इजहार’ प्रेम का इजहार करता है जिसमें सत्तर वर्षीय बुजुर्ग भी ‘वेलेन्टाइन डे’ पर भावुक हो उठता है जहां पाश्चात्य संस्कृति भी मुखर हो उठी है. ‘प्रेम-परिणय’ आज की परिस्थितियों में कार्यरत लड़के-लड़कियां किस प्रकार ‘लिव-इन’ और ‘लव-इन-मैरिज’ में आसक्त हैं का संकेत देती है. आये दिन यह एक फ्रैशन के रूप में देखने को मिलता है जिससे समाज ग्रस्त और त्रस्त होता जा रहा है — निश्चय ही यह एक सामाजिक प्रदूषण है. ‘सौदा’ ज़मीर के क्रय-विक्रय का संकेत देती है जिसे बार-बार बिकना पड़ता है.

इसी प्रकार सभी लघुकथाएं किसी न किसी सामाजिक समस्या, सांस्कृतिक समस्या, आर्थिक समस्या, राजनीतिक समस्या विषयक समस्याओं पर आधृत हैं. जीवन और जगत की समस्याएं रचनाकार की संवेदनशीलता को प्रभावित करती रही हैं. जिससे प्रेरित और प्रभावित होकर रचनाकार ने सामाजिक-सांस्कृतिक विसंगतियों, विद्रूपताओं, विडंबनाओं एवं विषमताओं के परिप्रेक्ष्य में इन लघुकथाओं की सर्जना की है. आस्था और विश्वास ने परंपरा और आधुनिकता बोध के द्वंद्वत्मक धरातल पर रचनाकार को अपनी रचना-धर्मिता को प्रभावित करने का सुअवसर प्रदान किया है ताकि समसामयिकता बोध से सित्त ये लघुकथाएं पाठकीय स्पंदन में सहभागी बन सकें. सहज, सरल एवं सुबोध भावाभिव्यक्ति की इन लघुकथाओं में विषय वैविध्य के साथ-साथ रसानुभूति कराने की अद्भुत क्षमता है. अनुभव की आंच में पकायी गयी इन लघुकथाओं में सत्यान्वेषण और तथ्यान्वेषण भी काम्यसिद्ध है. रचनाकार ने श्रमपूर्वक अपनी रचनाधर्मिता का निर्वहन किया है जिसके लिए अनेकानेक धन्यवाद और साधुवाद. कृति स्वागत योग्य है.

❧ ८/२९ ए, शिवपुरी,

अलीगढ़-२०२००१ (उ. प्र.)

मो.: ९८९७४५२४३९



कथाकार ने स्वाभाविकता के धरातल पर रचा है. फलस्वरूप उदय से स्वर्गवासी मित्र ललित ने जो वादा लिया था, उसने पूरा करके कोई आदर्श स्थापित न करके एक स्वाभाविक फ़ैसला किया है, ऐसा लगा. कहानी की बुनावट की इस खूबी की सराहना होनी चाहिए. रेणु के स्व. पति की बरसी पर जब सुरभि और उसका पति उनके घर के बैठक खाने में पहुंचते हैं, तो वहां गमगीन माहौल था. उस गमगीन माहौल के रहते कथाकार ने बैठक खाने का ऐसा वर्णन किया है जैसे वे खुशी के मौके पर वहां पहुंचे हैं. यह वर्णन खटकता है. डॉ. दीप्ति पटनायक ने आधुनिक इंसानों की संकीर्णता के दायरों से मुक्त होकर व्यापक दुनिया से जुड़ने का सहज सरल रास्ता कहानी 'धीरा मौसी' में दिखाया है. कहानी की नायिका सबके सुख-दुख में भागीदार बनते हुए व्यक्ति के एक से अनेक हो जाने का मंत्र देती है. अन्य कहानियां, लघुकथाएं और काव्य रचनाएं भी पठनीय हैं. प्रख्यात व्यंग्यकार यज्ञ शर्मा से मधु अरोड़ा द्वारा लिया गया साक्षात्कार ठीक है. सविता बजाज अभिनेत्री एवं लेखिका, दोनों रूप में प्रणम्य है. उन्होंने दुनिया देखी-भोगी है. अनुराधा तिवारी जैसी बहुआयामी युवा प्रतिभा को अपने साक्षात्कार कौशल के द्वारा वे काफ़ी उभार सकती थीं, किंतु साक्षात्कार का एक चौथाई हिस्सा तो उन्होंने अपने बारे में बताने में खर्च कर दिया. अनुराधा की प्रतिभा की बहु आयामिता और उनके संघर्ष को कुरेद कर वे पाठकों के सामने नहीं रख सकीं. वे बार-बार उनके युवापन और उनकी सुंदरता पर अटक जाती हैं. पत्रिका के पृष्ठ ४४ पर अनुराधा से पूछा गया प्रश्न "अनुराधा, जब आप बीस साल की थीं... कोई अनुभव?" से जो ध्वनि निकलती है, वह ठीक नहीं लगी. क्या अनुराधा तिवारी जैसी युवती को अब तक मिली सफलता उनके युवा और सुंदर होने का प्रतिफल मात्र है? सविता जी से हम बेहतर की उम्मीद करते हैं. आशा है, वे देह से ऊपर उठकर नारी-प्रतिभा को परखेंगी. दुनिया के सामने लायेंगी. उनकी प्रतिभा तो अभिनंदनीय है ही. मेरे लिए भी वे सम्मान्य हैं.

- युगेश शर्मा

'व्यंकटेश कीर्ति', ११ सौम्या एन्क्लेव

एक्सटेशन, चूनाभट्टी, भोपाल-४६२०१६

▶ 'कथाबिंब' अप्रैल-जून २०१५ अंक पढ़ा. मनमोहक आवरण चित्र के साथ इस अंक की धारदार

कहानी 'धीरा मौसी' बेहद अच्छी लगी. जो मां के व्यक्तित्व की पूरी संवेदना मानस पर उकेरती चली गयी. मां की ममता, प्यार और सहिष्णुता शायद ही किसी अन्य रिश्ते में हो. सविता के आंसू इसके सबूत हैं.

सुरभि बेहेरा की कहानी 'अंतिम इच्छा' ने पुरानी बातें दोहराई हैं. हमें उनसे नये प्रयोगात्मक तथ्यों से लबरेज कहानियों की अपेक्षा है. जिस कमी को पूरी करती कहानी 'गुलाबी लिफ़ाफ़ा' नयी पहल की ओर इंगित करती है. जहां जीवन साथी ही बेस्वाद होती दांपत्य जिंदगी में नमक लाने की तरक्रीब निकालता है.

हमेशा की तरह 'मुकुल' की लघुकथा प्रभावकारी है. 'आमने-सामने' स्तंभ में जयप्रकाश त्रिपाठी की आत्मरचना पढ़कर काफ़ी उत्प्रेरित हुई. जयप्रकाश जी का गीत 'लरजते' शबनम की लड़ी जैसा है, जिसका पाठ अपना आस्वाद रचता है. उनकी उम्दा ग़ज़ल मानवीय विवशताओं, विषमताओं का लेखा-जोखा जैसा है. यज्ञ शर्मा जी से बातचीत के कई वैचारिक पहलू विमर्श या परिचर्चा के लिए उत्प्रेरित करते हैं.

'लिव इन' पर उनके पारदर्शी खयालात हैं. जैसे नेताओं की तरह प्रौढ़ों का 'लिव इन' का फ़ायदा उठाना जो रिलेशन नहीं पार्टनर होने की तरह है. उनका ये बेहतर संवाद जेहन में बसता है. मर्मस्पर्शी कहानी 'बाट जोहते हुए' नियति के नाम पर, स्त्रियों की आंतरिक यंत्रणा का जीवंत स्वरूप है.

- मंजुला उपाध्याय मंजुल

सम्राट चौक, पूर्णियां-८५४३०१(बिहार).

▶ 'कथाबिंब' सन १९७९ से छप रही अपनी तरह की उपयोगी पत्रिका है. कहानियां, लघुकथाएं, कविताएं और इसके स्तंभ अब हमारी आदत में शुमार हो चुके हैं. कोई अंक न देखें तो लगता है कुछ छूट रहा है. 'आमने-सामने' और 'सागर-सीपी' दोनों महत्वपूर्ण हैं और आवरण तो इसका लाजवाब होता ही है. लेखकों के पते पूरी जानकारी दे जाते हैं. इसका दाम चाहें तो २० रु. भी कर सकते हैं. मुझे 'कथाबिंब' बराबर डाक से मिल रहा है.

- प्रो. फूल चंद 'मानव'

साहित्य संगम, २३९ दशमश एन्क्लेव,

जीरकपुर (पंजाब) - १६०१०४